पुष्प ६

व्रत-चन्द्रिका

लेखक—
गौरीशंकर उपाध्याय एम. ए.

सचित्र-ग्रन्थमाला षष्ठ-पुष्प

व्रत-चन्द्रिका

(हमारे व्रत और त्यौहारों का संक्षिप्त प्रामाणिक विवेचन)

लेखक

गौरीशंकर उपाध्याय एम. ए.

भूमिका-लेखक

पं० बलदेव उपाध्याय, एम. ए.

साहित्याचार्य

प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालय

१९४५

प्रकाशक
शारदा मन्दिर,
काशी ।

प्रथम संस्करण
मूल्य १॥)

मुद्रक
श्रीनाथदास अग्रवाल,
टाइम टेबुल प्रेस, बनारस ।
७८९-४५

भूमिका

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
श्रद्धां दक्षिणयाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

धर्म और व्रतका सम्बन्ध बड़ा गहरा है। शायद ही कोई ऐसा धर्म होगा जिसमें व्रत के आचरण को महत्त्व न दिया गया हो। हमारे वैदिक धर्म में व्रत की महती प्रतिष्ठा है। व्रत का ठीक ठीक निर्णय करने के लिये तथा उसका उचित रूप से अनुष्ठान करने के लिये जितना आग्रह हमारे धर्म में दिखलाया जाता है उतना किसी भी धर्म में नहीं होता। इसीलिये हमारे धर्मशास्त्र का एक विशेष अंग व्रतों के निर्णय और अनुष्ठान को लेकर प्रवृत्त होता है। उसी की मोटी मोटी बातें एक साथ संग्रह कर लेखक ने यह सुन्दर उपादेय पुस्तक लिखी है। इसके लिये वह हमारे और धर्मप्रेमी हिन्दू जनता के अभिनन्दन के पात्र हैं।

व्रत का सामान्य अर्थ क्या है ? निरुक्त में इसका सामान्य अर्थ 'कर्म' बतलाया गया है। यह कर्ता को शुभ या अशुभ रूप से बांध लेता है इसीलिये इसे 'व्रत' कहते हैं। वृणोति

निबध्नाति कर्तारम् इति वृतम्। कर्म-फल उत्पन्न करने के कारण कर्ता को बाँध लेता है। जो कोई कर्म करता है उसका फल उसे भोगना पड़ता है। इसीलिये कर्म को वृत कहते हैं। इस अर्थ में इसका प्रयोग संहिताओं में खूब मिलता है:—यथा अथा वयमादित्यस्य व्रत तव (ऋ०)। ब्राह्मणाः व्रतचारिणः (ऋ० ७।१०३।१)। अदब्धानि वरुणस्य वृतानि (ऋग्वेद) आदि आदि। वृत का एक दूसरा भी अर्थ है जिसमें इसका लौकिक संस्कृत में विशेष प्रयोग दिखलाई पड़ता है। वह है उपवास आदि नियम विशेष। इस अर्थ में भी इसका प्रयोग वेद में मिलता है यथा—अग्ने वृतपते व्रतं चरिष्यामि (शुक्ल० यजु० संहिता १।५)। यह निवृत्ति रूप वृत उपवास आदि है। यह तीन प्रकार का होता है-नित्य, नैमित्तिक और काम्य। नित्य वृत वह है जिसका अनुष्ठान हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। यथा—एकादशी वृत। नैमित्तिक वृत किसी निमित्त (कारण, अवसर) को लेकर प्रवृत्त होता है यथा-चान्द्रायण व्रत। काम्य कर्म किसी विशेष कामना की सिद्धि के लिये किया जाता है जैसे भिन्न तिथियों में किये गये वृत। वेद में विहित कर्मों का सम्पादन करना प्रत्येक हिन्दू का प्रधान कर्तव्य है। इस विषय में मनु का कथन ध्यान देने योग्य है:—

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्॥

व्रत का प्रधान उद्देश्य आत्मशुद्धि तथा परमात्म-चिन्तन है। संसार में नाना प्रपंचों में फँसे रहने के कारण हमें परमात्म-चिन्तन का अवसर ही कम मिलता है। व्रत के दिन वह अवसर आप से आप सुलभ है। व्रत में उपवास का विधान है। केवल अन्नपान के परित्याग से ही उपवास की पूर्ति नहीं होती। उपवास का शाब्दिक अर्थ है—उप समीपे वासः। समीप में रहना अर्थात् अपने इष्टदेव के पास रहना। सच्चा उपवास तो परमात्मा का चिन्तन करते हुए उनके साथ तन्मय होकर रहना है। इसके लिये अन्नपान का त्याग भी आवश्यक है। इस विषय में गीता का कहना बिलकुल ही ठीक है—विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। अर्थात् जो प्राणी निराहार रहता है उससे विषय आप से आप निवृत्त हो जाते हैं। इस प्रकार व्रतों के विधिवत् अनुष्ठान से पर्याप्त आत्मशुद्धि होती है। इनका ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है। रामनवमी, जन्माष्टमी आदि अनेक व्रत भगवान् की किसी विभूति अथवा अवतार से सम्बन्ध रखते हैं। उस दिन व्रत करने से हमारे सामने उस विशिष्ट अवतार की अलौकिक लीलाएँ हृदय में नवीन उत्साह, नई स्फूर्ति तथा अनुपम गुणों का उदय कराती हैं। अतः स्पष्ट है कि व्रतों के अनुष्ठान का प्रभाव मानव-जीवन पर बड़ा गहरा पड़ता है। परन्तु व्रत के अनुष्ठान विधिवत् होने चाहिये। सबसे पहला गुण जो व्रत करनेवाले में होना चाहिये वह है वैदिक कृत्यों में गाढ़ श्रद्धा। श्रद्धा का प्रभाव

चित्त, पर बड़ा ही गहरा पड़ता है। 'गुरु वेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा—श्रद्धा है गुरु और शास्त्र के वाक्यों में अटूट विश्वास। इस विश्वास के साथ आस्तिक्य-बुद्धि का होना भी नितान्त आवश्यक है। हमारे हृदय में यह दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि इस नाना रूप जगत के मूल में एक सर्वशक्तिमान् नियन्ता विद्यमान् है। उसे ही परमकल्याण कारक होने के कारण 'शिव' कहते हैं, वही समग्र मनुष्यों को शरण देने के कारण 'नारायण' है, जगत् के समग्र प्राणियों में व्यापक होने के कारण वही 'विष्णु' है। संसार के जितने पदार्थ हैं समस्त उसी की शक्ति से अनुस्यूत हैं। वह प्राणों का प्राण है। समस्त देवता उसी के प्रतिनिधि हैं। काल के नियमन करनेवाले 'सूर्य' और 'चन्द्र' उसी के नेत्र हैं। जगत् में प्राण संचार करने वाला 'वायु' उसका श्वास रूप है। जब तक यह भावना दृढ़ नहीं होती, तब तक व्रत की निष्ठा पूरी नहीं होती। आचरण की सत्यता तीसरा सद्गुण है जिसकी सत्ता सद्यः फल देनेवाली होती है। धार्मिक कृत्य जो कुछ किया जाय वह सचाई के साथ किया जाना चाहिए। उसका केवल प्रदर्शन नहीं होना चाहिए। यदि भगवान् में हार्दिक आस्था एवं पूर्ण विश्वास तथा सचाई के साथ व्रत का अनुष्ठान किया जाय तो उसके सिद्ध होने में विशेष विलम्ब नहीं होता।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
आमृत्योर्यत्नमातिष्ठेत् नैनां मन्येत दुर्लभाम्॥

यद् दुष्करं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुस्तरम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

इस ग्रन्थ में पुरुषों के व्रतों का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। नारियों के व्रतों का भी संक्षिप्त परिचय है। विषय की पूर्ति के लिए आर्यसमाज के कतिपय उत्सवों का वर्णन कर दिया गया है। यह पुस्तक संक्षिप्त होने पर भी प्रामाणिक और उपादेय है। ऐसे ग्रन्थ की हिन्दी जगत् की बड़ी आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति किसी कदर इससे हो जावेगी।

अन्त में, मैं इस सुन्दर पुस्तक के लेखक गौरीशङ्कर जी को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि ऐसी ही उपयोगी पुस्तकें लिखकर वे हमारे धार्मिक साहित्य की वृद्धि करेंगे।

काशी विश्वविद्यालय,
नागपञ्चमी
१३—८—४१

बलदेव उपाध्याय

मंगल श्लोकाः ।

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय
नागाननाय श्रुति-यज्ञ-विभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ! नमो नमस्ते ॥ १ ॥

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ २ ॥

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्-गाङ्गवारिं
महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ॥ ३ ॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकी-शोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ ५ ॥

विषय सूची

भाद्र मास

आश्विन मास

कार्तिक मास

मार्गशीर्ष मास

माघ मास

श्री गणेशाय नमः

व्रत-चन्द्रिका

चैत्र] १. सम्वत्सर-प्रतिपदा [शुक्ल

हमारे साल का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपद् से होता है। इसलिये इसको 'सम्वत्सर प्रतिपदा' कहते हैं। साल का प्रथम दिन होने के अतिरिक्त यह अन्य अनेक कारणों से अपना विशेष महत्त्व रखता है।

प्राचीनता

ब्रह्म पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा जी ने इसी दिन सृष्टि करनी प्रारम्भ की—

"चैत्रे मासि जगत् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।"

ब्रह्मपुराण में यह भी लिखा है कि "चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन ब्राह्मी सभा में ब्रह्मा जी ने सब देवताओं को बुलाकर कहा कि आज से तुम लोगों को सृष्टि संबंधी कार्यों में लग जाना चाहिये।" तदनुसार सब देवता अपने अपने कार्यों में लग गये और वही दिन तब से संसार में परम पवित्र माना जाने लगा। यह त्यौहार अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है क्योंकि अथर्व वेद में भी इसका उल्लेख मिलता है[1]। इसके पौराणिक तथा वैदिक स्वरूप में केवल इतना ही अन्तर है कि जहाँ पुराण में ब्रह्मा की मूर्ति बना कर पूजन करने का विधान है वहाँ वेद में सम्वत्सर रूप प्रजापति की प्रतिमा का पूजन लिखा है। इसके[2]

---

१ सम्वत्सरस्य प्रतिमां यां त्वां राऽयुपास्महे।
सा न आयुष्मती प्रजा रायस्पोषेण संसृज॥ अ० वे० ३।१०।१०

२ शतपथ ब्राह्मण ११।१।६।१३

अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में भी इस त्यौहार का उल्लेख मिलता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि यह त्यौहार अत्यन्त प्राचीन है तथा वैदिक है।

इस त्यौहार का केवल यही महत्त्व नहीं है कि ब्रह्मा जी ने इस दिन सृष्टि प्रारम्भ की थी बल्कि इसीदिन भगवान् के आदि अवतार मत्स्यावतार का प्रादुर्भाव हुआ था। जिस दिन को भगवान् ने स्वयं जन्म लेकर कृतार्थ किया हो उसके महत्त्व का वर्णन करना सचमुच अत्यन्त कठिन कार्य है। स्मृति कौस्तुभ के लेखक ने लिखा है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपद् को रेवती नक्षत्र में विष्कम्भ योग में दिन के समय भगवान् ने मत्स्यरूप में अवतार लिया[1]। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि सत्ययुग का प्रारम्भ इसी दिन को हुआ था। परन्तु इन सब बातों से अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह दिन भारत के उस महामहिम सार्वभौम सम्राट् विक्रमादित्य के सम्वत्सर का प्रथम दिन है जिसकी द्विशहस्र शताब्दी बड़े ज़ोर शोर से भारत के कोने कोने में मनायी गयी। ईसाइयों के नये दिन (न्यू इयर्स डे) का महत्त्व केवल इतना ही है कि वह साल का नया दिन है परन्तु हमारी चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का महत्त्व ऐतिहासिक तथा धार्मिक दोनों दृष्टि से है। इसीदिन भगवान् के मत्स्यावतार रूपमें प्रादुर्भूत होने से तथा इसी दिन सत्ययुग के प्रारम्भ होने के कारण इस प्रतिपदा के धार्मिक महत्त्व का जितना भी वर्णन किया जाय उतना थोड़ा है। भारत के सर्व श्रेष्ठ सम्राट् विक्रमादित्य के सम्वत्सर का प्रथम दिन होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी सुतरां अधिक है। मेरी विनम्र सम्मति में संसार के नये साल के प्रथम दिनों में शायद ही कोई ऐसा दिन हो जो हमारे चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के समान ऐतिहासिक तथा धार्मिक दोनों प्रकार का महत्त्व रखता हो। यही कारण है कि हम हिन्दुओं को इस त्यौहार को विशेष रूप से मनाना चाहिये।

महत्त्व

इस दिन प्रातः काल में स्नान करने के पश्चात् हाथ में गन्ध, अक्षत, पुष्प

---

१ कृते च प्रभवे चैत्रे, प्रतिपच्छुक्लपक्षगा।
रेवत्यां योगविष्कम्भे दिवा द्वादश नाडिकः॥
मत्स्यरूपः कुमार्यां च अवतीर्णो हरिः स्वयम्। स्मृ० कौ०

और जल लेकर संकल्प करके नयी बनी हुयी चौरस चौकी या बालू की वेदी पर स्वच्छ सफेद वस्त्र बिछाये और हलदी अथवा केसर में रँगे हुये अक्षतों का अष्टदल कमल बना कर उस पर सोने की बनी हुयी मूर्ति स्थापित करके 'ॐ ब्रह्मणे नमः' से ब्रह्मा का आवाहन कर पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदि से उनकी पूजा करनी चाहिये। पूजा के अन्त में ब्रह्मा से यह प्रार्थना करनी चाहिये कि "भगवन्! आपके प्रसाद से मेरे सब वर्ष भर के विघ्न नष्ट हो जाँय और यह आगामी वर्ष मेरे लिये कल्याणकारक तथा शुभ हो।"

"भगवंस्त्वत्-प्रसादेन, वर्षं क्षेममिहास्तु मे।
संवत्सरोपसर्गा मे विलयं यान्त्वशेषतः॥"

पूजन के पश्चात् नवीन पंचाङ्ग से उस वर्ष के राजा मन्त्री, सेनाध्यक्ष आदि का फल श्रवण करे। इसके बाद विविध प्रकार उत्तम और सात्विक पदार्थों से ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा स्वयं केवल एक बार खाय। नये वस्त्र को धारण कर अपने घर को ध्वजा, पताका, तोरण और बन्दनवार आदि से सुशोभित करे। नीम के कोमल पत्तों को भक्षण करे जिससे साल भर तक रुधिर-विकार से उत्पन्न रोग न होने पावे। यदि सामर्थ्य हो तो प्याऊ (पनिसरा) की स्थापना करनी चाहिये। ऐसा करने से राजा, प्रजा तथा राज्य में वर्ष भर तक व्यापक शान्ति रहती है।

नये वर्ष के प्रथम दिन का त्यौहार प्रायः प्रत्येक जाति एवं राष्ट्र में मनाया जाता है। ईसाई लोग इस त्यौहार को बड़े ठाट बाट से मनाते हैं। इस दिन स्कूल, कालेज, आफिस सभी संस्थायें बन्द रहती है। वे इसे 'न्यू इयर्स डे' के नाम से पुकारते हैं। मुग़ल-कालीन बादशाह भी इस त्यौहार को जिसे वे 'नौ रोज का ज़श्न' कहते थे बड़ी धूम धाम के साथ मनाते थे। परन्तु दुःख है इस समय हम लोग इसे विशेष रूप से नहीं मनाते। फिर भी दक्षिण भारत में इस त्यौहार का विशेष प्रचार है। मलाबार प्रान्त में बड़े ठाट बाट से यह मनाया जाता है। हमें चाहिये कि इसे अपना राष्ट्रीय पर्व समझ कर बड़े धूम धाम से मनावें और इस प्रकार अपने परम प्रतापी राजा विक्रमादित्य की कीर्ति को समुज्वल बनाये रक्खें।

२. नवरात्र

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से चैत्र शुक्ला नवमी तक ये नव दिन नवरात्र के नाम से प्रसिद्ध है। हमारे यहाँ साल में दो नवरात्र प्रसिद्ध हैं—(१) पहला आश्विन मास की शुक्ल प्रतिपद् से प्रारम्भ होकर नवमी तक रहता है और (२) चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक। पहिला शारदीय नवरात्र के नाम से प्रसिद्ध है और दूसरा वासन्तीय। इन दोनों नवरात्रों में पहिला अधिक विख्यात है। शारदीय नवरात्र का वर्णन यथास्थान किया जायेगा।

नवरात्र की प्रतिपदा 'सम्मुखी'[१] शुभ होती है। नवरात्र के आरम्भ में अमायुक्त प्रतिपदा अच्छी नहीं होती[२]। आरम्भ में घटस्थापन के समय यदि चित्रा और वैधृति हों तो उनका त्याग कर देना चाहिये क्योंकि चित्रा में धन का और वैधृति में पुत्र का नाश होता है[3]। दोनों नवरात्रों में शक्ति की उपासना ही प्रसिद्ध है। अतः देवी के भक्त 'दुर्गासप्तशती' का पाठ करते हैं। कुछ लोग रामायण, भागवत, तथा अध्यात्म का भी पाठ करते हैं। नवरात्र का प्रयोग प्रारम्भ करने के पहिले स्नानादि करके मिट्टी की वेदी बनाये। उसमें जौ और गेहूँ दोनों मिला कर बोये। वहीं ताम्बे या मिट्टी के कलश की यथाविधि स्थापना करके गणेश जी की पूजा कर देवी की प्रतिमा की स्थापना कर पूजन करना चाहिये। अपने सामर्थ्य के अनुसार नव दिन तक नव कन्याओं को देवी मान कर उनकी गन्धपुष्पादि से पूजा करके उन्हें भोजन कराये और फिर आप भोजन करे।

---

१ प्रतिपत्सम्मुखी कार्या या भवेदापराह्णिकी। स्कन्द पुराण।

२ अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपत् पूजने मम। (देवी भागवत।)

३ प्रारम्भं नवरात्रं स्यात् हित्वा चित्रां च वैधृतिम्।
वैधृतौ पुत्रनाशः स्यात्, चित्रायां धननाशनम्। रुद्रयामल

व्रती को ब्रह्मचारी, मिताहारी तथा जमीन पर सोना चाहिये। पाठ समाप्त होने पर दसवें दिन देवी का विसर्जन करे। ऐसा करने से घर में सुख सम्पत्ति स्थायी रूप से निवास करती है।

चैत्र] [शुक्ल

३. राम-नवमी

चैत्र शुक्ला नवमी को राम नवमी कहते हैं क्योंकि इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र का जन्म हुआ था। यह त्यौहार हमारे त्यौहारों में अपना अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इसे हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृति के प्रतीक भगवान् राम के जन्म दिन होने का सौभाग्य प्राप्त है। ईसाई लोगों में बड़े दिन का जो महत्त्व है उससे कहीं अधिक राम-नवमी का गौरव है। यह प्रत्येक हिन्दू के लिये पुण्य का पर्व है तथा प्रत्येक भारतवासी के लिये राष्ट्रीय चेतना का दिवस है। राम-नवमी को भुलाना भारत को भुलाना है। यदि हमारे समस्त त्यौहार लुप्त हो जाँय परन्तु केवल रामनवमी ही शेष रह जाय तो भी यह हिन्दू-संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने में सदा समर्थ रहेगा।

राम-नवमी के व्रत में मध्याह्न व्यापिनी तिथि लेनी चाहिये। अर्थात् जिस दिन दोपहर को नवमी पड़े उसी दिन रामनवमी माननी चाहिये। अगस्त्य संहिता में लिखा है कि यदि चैत्र शुक्ला नवमी पुनर्वसु नक्षत्र युक्ता हो और मध्याह्न-व्यापिनी हो, तो उसको महापुण्यवाली जाननी चाहिये। विष्णुभक्तों को अष्टमी-विद्धा नवमी कभी भी न लेनी चाहिये। नवमी में उपवास और दशमी को पारण करना चाहिये। चैत्र शुक्ला नवमी को स्वयं भगवान का जन्म हुआ है। अतः पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त यह तिथि सम्पूर्ण फलों को देती है[१]।

---

१ चैत्रशुक्ला तु नवमी ; पुनर्वसु-युता यदि।
सैव मध्याह्न-योगेन ; महापुण्यतमा भवेत् ॥

अगस्त संहिता में लिखा है कि पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त रामनवमी को मेष-राशि में रामचन्द्र का जन्म हुआ था। इसलिये रामनवमी का व्रती उस दिन उपवास करे और रात्रि में जागरण करता हुआ प्रातःकाल विधि के साथ भगवान् रामचन्द्र का पूजन करे। अपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मण को भोजन करावे और गौ, भूमि, सुवर्ण, तिल, वस्त्रादि दक्षिणा में दे। जो पापी मनुष्य रामनवमी के दिन भोजन करता है, वह कुम्भी-पाक नरक में गिरता है। रामनवमी के व्रत को न कर मनुष्य चाहे और व्रतों को करे परन्तु उनके फल को प्राप्त नहीं करता। केवल एक रामनवमी के व्रत को ही करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है किन्तु इसे भक्ति और श्रद्धा के साथ करना चाहिये। इस उपर्युक्त कथा को सुनकर सुतीक्ष्ण ऋषि ने अगस्त्यजी से पूछा कि हे भगवन्! रामनवमी के दिन रामचन्द्र की प्रतिमा का दान किस प्रकार से होता है, इसे कृपया विस्तारपूर्वक बतलाइये। अगस्त्यजी बोले—हे सुतीक्ष्ण, तुम वैष्णव हो, इस कारण प्रतिमा-दान की विधि कहता हूँ, सुनो।

कथा

व्रती चैत्र शुक्ल अष्टमी को जितेन्द्रिय रहे और नवमी को प्रातःकाल स्नान करके भगवान् रामचन्द्र का ध्यान कर वैदिक ब्राह्मण को बुलाकर प्रार्थना करे "भगवन्, आप मेरे आचार्य बनें। मैं आपको प्रतिमा दान करूँगा।" ब्राह्मण को भोजन करा उस दिन विदा करे। नवमी को प्रातःकाल उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर ध्वजा, तोरण आदि से घर को सजा कर, भव्य मण्डप में वेदी की स्थापना करे। उस वेदी पर दो पल वजनवाली सोने की बनी भगवान् रामचन्द्र की मूर्ति की स्थापना करे और विधि से उसका पूजन कर रात्रि में जागरण करे। दशमी को प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक प्रतिमा का अर्चन करे और—

नवमी चाष्टमी विद्धा; त्याज्या विष्णुपरायणैः।
उपोषणं नवम्यां वै, दशम्यां पारणं भवेत्॥
चैत्रे मासि नवम्यां वै; जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वृक्ष - संयुक्ता, सा तिथिः सर्वकामदा॥

—अगस्त्य-संहिता।

इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलंकृताम् ।
चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां, रामोऽहं राघवाय ते ॥
श्रीरामप्रीतये दास्ये, तुष्टो भवतु राघवः ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर आचार्य को प्रतिमा का दान दे और ब्राह्मण-भोजन करा कर उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार व्रत की समाप्ति पर स्वयं भोजन करे। उपर्युक्त प्रकार से रामनवमी का व्रत करने से अनेक जन्म कृत पापों का क्षय होकर अनायास ही मनुष्य को भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है।

आजकल यह त्यौहार अगस्त्य-संहिता के विधान के अनुसार नहीं किया जाता। फिर भी लोगों के हृदय में इसके प्रति असीम श्रद्धा है। रामनवमी के

लौकिक-रूप

दिन कितने लोग दिन भर उपवास करते हैं। कुछ दिन में व्रत करते हैं और सन्ध्या के समय मिष्ठान्न भोजन करते हैं। रामचन्द्र के मन्दिरों में प्रायः चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक नवाह्न नव दिनों की कथा होती है। किसी मन्दिर में वाल्मीकि रामायण का तथा किसी में रामचरित मानस का नवाह्न पाठ होता है। कथा के अतिरिक्त मन्दिरों में कीर्तन और भजन भी होते हैं। इस दिन रामचन्द्रजी के मन्दिरों में बड़ा शृंगार किया जाता है। मन्दिरों में सजावट तथा रोशनी जलाई जाती है। सन्ध्या समय भक्त जनता मन्दिरों में रामचन्द्रजी का दर्शन करती है और अपने को कृतकृत्य समझती है। कहीं-कहीं रामनवमी के दिन विमान भी निकलते हैं। तिरुपति और रामेश्वर में यह महोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। अयोध्या में रामनवमी का बहुत बड़ा मेला होता है जिसमें भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोग आते हैं। उस दिन लोग सरयू में स्नान करते हैं और हनुमानगढ़ी तथा श्री रामचन्द्रजी के मन्दिर में जाकर भगवान् का दर्शन करते हैं। इस मेले में सम्मिलित होने के लिए इस दिन अयोध्या में जो जनसमुदाय उमड़ता है उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। राम की जन्मभूमि में राम के जन्म दिन को उनका दर्शन करना सचमुच परम सौभाग्य का विषय समझा जाता है। जो लोग अयोध्या नहीं जा सकते वे लोग गंगा अथवा किसी अन्य नदी में स्नान कर रामचन्द्रजी का दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझते हैं।

रामनवमी का त्यौहार हमारा राष्ट्रीय पर्व है। यह राष्ट्रीय चेतना देने वाला पुनीत दिवस है। यह हिन्दू संस्कृति का स्मारक तथा हमारे विस्मृत आदर्शों का परिचायक है। यह अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को खोकर परतन्त्रता के अन्धकार में भटकने वाली भारतीय जनता के लिये प्रकाश-स्तम्भ है। यह अधःपतन की अवस्था में वर्तमान हिन्दू जाति के लिये उत्साह का स्रोत है। यह भारत के समृद्ध साम्राज्य को कन्दुक के समान ठुकरा देनेवाले महापुरुष की पुण्यतिथि है। यह भ्रातृ-प्रेम के अलौकिक आदर्श को उपस्थित करने वाले, मनुष्य के कर्तव्यों की मर्यादा को स्थापित करनेवाले, मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र का जन्मदिन है। परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि हम लोग इस तिथि के महत्त्व को अच्छी तरह से नहीं समझते और इसे उस ढंग से नहीं मनाते जैसा कि मनाना चाहिये। इस दिन केवल उपवास कर रामचन्द्र की मूर्ति का दर्शन कर ही हमारे कर्तव्यों की इति श्री नहीं हो जाती। हमें राम के भ्रातृ-प्रेम, पिता की आज्ञा का पालन, एकपत्नी व्रत, सहचरों के साथ समानभाव, भक्तों की रक्षा, दुष्टों का दमन, मातृभूमि-प्रेम, वर्णाश्रमधर्म का पालन तथा उनकी विशाल हृदयता आदि गुणों से कुछ शिक्षा लेनी चाहिये और उनके द्वारा स्थापित आदर्शों को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न करना चाहिये। इस समय जब कि देश में भाई भाई में झगड़ा, बात बात में माता पिता की अवज्ञा, बहुविवाह का स्वागत, वर्णाश्रमधर्म का उल्लंघन, दुष्टों की पूजा तथा सज्जनों का दमन हो रहा हो, ऐसे समय रामनवमी के त्यौहार का महत्त्व और भी बढ़ गया है। अतः अब आवश्यकता इस बात की है कि रामनवमी के त्यौहार को राष्ट्रीय रूप दिया जाय, स्थान स्थान पर राम के जीवन तथा आदर्श चरित्र पर व्याख्यान हों, प्रत्येक मन्दिर में राम नाम की ध्वनि सुनाई पड़े, प्रत्येक घर में भाई भाई में प्रेम बढ़े तथा माता, पिता आदि गुरुजनों का आदर हो। तभी रामनवमी का त्यौहार सफल समझा जायेगा।

महत्त्व

४. हनुमान-जयन्ती

यह त्यौहार हनुमान् जी की जन्मतिथि के दिन मनाया जाता है। हनुमान जी की निश्चित जन्म तिथि कौन सी है इस विषय में शास्त्रों में दो मत मिलते हैं।

जन्म तिथि का निर्णय

'उत्सव-सिन्धु' में लिखा है कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी, भौमवार को स्वाति नक्षत्र और मेष लग्न में अञ्जनी के गर्भ से हनुमान् जी के रूप में स्वयं शिवजी उत्पन्न हुये थे[1]। वाल्मीकि रामायण में हनुमान के चरित्र-वर्णन के सम्बन्ध में यह मिलता है कि "जन्म होते ही महावीर को भूख लगी, इसलिये उनकी माता फल लाने के लिये गयी थी। भूख से व्याकुल होकर हनुमान् ने सूर्य को ही फल समझा और वे उसे खाने के लिये आकाश में कूदे। उसी दिन राहु भी सूर्य को ग्रसने आया था[2]।" इससे अनुमान होता है कि स्वाती नक्षत्र में, मंगलवार को कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में महावीर का जन्म हुआ होगा। कार्तिक में मेष लग्न रात्रि में ही आता है। राहु उसी दिन सूर्य को ग्रसने आया था यह ठीक ही है क्योंकि सूर्यग्रहण अमावस को ही होता है। 'व्रत रत्नाकर' में भी यही लिखा है कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को मंगलवार को रात्रि में अञ्जना देवी ने हनुमान् जी को जन्म दिया[3]। इसके ठीक विपरीत 'हनुमदुपासना कल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ में चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को मंगलवार के दिन मूँज की मेखला से युक्त,

---

१ ऊर्जस्य चासिते पक्षे स्वात्यां भौमे कपीश्वरः।
मेषलग्नेऽञ्जनीगर्भाच्छिवः प्रादुरभूत् स्वयम् ॥ (उ. सि.)

२ यमेव दिवसं ह्येष ग्रहीतुं भास्करं प्लुतः।
तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम् ॥ उत्तर काण्ड ३५।३१

३ कार्त्तिकस्यासिते पक्षे, भूतायां च महानिशि।
भौमवारेऽञ्जना देवी हनुमन्तजीजनत् ॥ व्रत रत्नाकर।

कौपीन पहिने हुये और यज्ञोपवीत से भूषित हनुमान् जी का उत्पन्न होना लिखा है[१]। इसके अतिरिक्त पुराणों के वर्णन से एवं परम्परा से चैत्र शुक्ल पूर्णिमा ही हनुमान् जी की जन्मतिथि मानी जाती है। अतः इसी का यहाँ पर ग्रहण किया गया है।

हनुमान् की जन्मकथा तथा उनके विपुल पराक्रम का वर्णन वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड में बड़े विस्तार के साथ दिया गया है जिसका सारांश यहाँ पाठकों के मनोरंजन के लिये दिया जाता है।

कथा —लंका से लौटने पर, भगवान् रामचन्द्र के राज्याभिषेक होने के पश्चात् एक दिन रामचन्द्र ने अगस्त्य ऋषि से हनुमान के विषय में यह प्रश्न किया कि अतुलित पराक्रम होनेपर भी हनुमान् ने बाली को नष्ट क्यों नहीं कर दिया। इस पर अगस्त्य ऋषि ने उत्तर देते हुये कहा :—

सूर्य के वर से सुवर्ण के बने हुये सुमेरु पर्वत में केसरी का राज्य था। उसकी अति सुन्दरी अंजना नाम की स्त्री थी। एकबार उसने शुचि स्नान करके सुन्दर वस्त्राभरण धारण किये। उस समय पवनदेव ने उसके कान के छेद में प्रवेश करते हुये उसे आश्वासन दिया कि तेरे सूर्य, अग्नि, एवं सुवर्ण के समान तेजस्वी, वेद-वेदाङ्गों का मर्मज्ञ, विश्वविख्यात महाबली पुत्र होगा। दैवयोग से ऐसा ही हुआ। कार्तिक कृष्ण अमा की रात्रि में अञ्जनी के उदर से हनुमान् जी उत्पन्न हुये। दो प्रहर बाद सूर्योदय होते ही उन्हें भूख लगी। उनकी माता फल लाने के लिये जंगल में चली गयी। हनुमान् ने लाल वर्ण वाले बाल-सूर्य को लाल फल समझा और उसे तोड़कर लाने के लिये आकाश में उछल गये। उस दिन अमावस्या होने से सूर्य को ग्रसने के लिये राहु आया था। हनुमान् ने राहु को देख उसे एक जोरों से झटका दिया जिससे डर कर वह भाग गया और इन्द्र के

---

१ चैत्रे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां कुजेऽहनि।
मौञ्जीमेखलया युक्तं, कौपीनपरिधारकम्॥
नवमासगते पुत्रं सुपुत्रे साञ्जना शुभम्॥ ह. क.

पास जाकर अपनी प्रार्थना कह सुनायी तब क्रोधित होकर इन्द्र ने हनुमान् पर वज्र प्रहार किया। इससे इनकी ठोड़ी टेड़ी हो गई। जिससे इनका नाम संसार में हनुमान् (हनु = ठोढ़ी, मान् = वाला) प्रसिद्ध होगयी इन्द्र की इस धृष्टता पर क्रोधित होकर इनके पिता पवनदेव ने प्राणिमात्र का वायु संचार रोक दिया। तब संसार के लोग व्याकुल होकर ब्रह्मा के पास गये और अपने दुःखों को निवेदन किया। ब्रह्मा ने पवनदेव से वायुसंचार करने की प्रार्थना की और अपनी प्रार्थना स्वीकृत हो जाने पर प्रसन्न होकर अन्य देवताओं के साथ हनुमान् को वरदान दिया। ब्रह्मा जी ने अमित आयु का, इन्द्र ने वज्र से पुनः हत न होने का, सूर्य ने अपने शतांश तेज से युक्त और सम्पूर्ण शास्त्रों के विशेषज्ञ होने का, यम ने यमदण्ड से अवध्य होने का हनुमान् को वर दिया। जब हनुमान् जी को सब देवताओं से इस प्रकार का वरदान मिल गया तब वे ऋषियों के निवास स्थान में जाकर बड़ा उत्पात करने लगे। इस प्रकार हनुमान् के उत्पात को देखकर ऋषियों को बड़ा कष्ट हुआ। तब भृगुअंगिरा के वंश वालों ने क्रोध कर यह शाप दिया कि ए हनुमान्! जब कोई जितना तुम्हारे बल को स्मरण करायेगा तब तुम उतना ही जान सकोगे। अन्यथा हमारे शाप से मोहित रहोगे। हनुमान् को जब इस प्रकार का शाप मिला तब वे तेजोहत हो शन्तिपूर्वक ऋषियों के आश्रम में रहने लगे। इसी शाप के कारण हनुमान् अपने बल को नहीं जानता था। अतः वह बाली को न मार सके।

लौकिक स्वरूप

इस दिन व्रती का कर्तव्य है कि पूर्व रात्रि को पृथ्वी पर शयन करके पूर्णिमा को अरुणोदय से पहिले उठकर राम-जानकी तथा हनुमान का स्मरण करके प्रातः स्नानादि से निवृत्त हो ले। तत्पश्चात् हाथ में जल लेकर संकल्प करके, हनुमान् की प्रतिमा को प्रतिष्ठा कर, उत्तर मुख बैठकर प्रार्थना करे और यथाविधान षोड़शोपचार से पूजन करे। पूजा में धूप, दीप, पुष्प और नैवेद्य आदि को चढ़ाये। पूजा के अन्त में प्रसाद को बाँटे और ब्राह्मण भोजन करा कर स्वयं भोजन करे। रात्रि में हनुमान् के नाम का कीर्तन करे। यदि किसी कार्य की सिद्धि के लिये हनुमान् का व्रत करना हो तो सबेरे स्नान कर वेदी पर अक्षत-पुञ्ज से १३ कमल बनावे। उन पर कलश

स्थापन कर उनके ऊपर लगाये लगे गये पीले वस्त्र पर १३ कमलों में १३ गाँठ लगा हुआ नौ सूत का पीला डोरा रक्खे। फिर वेदी का पूजन करके उपर्युक्त विधि से अथवा पद्धति के क्रम से हनुमान् जी का पूजन, जप, ध्यान और उपासना आदि करे। बाद में ब्राह्मण भोजन करा कर व्रत समाप्त करने से समस्त अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

हनुमान् जी के दो स्वरूप हैं (१) बाल-ब्रह्मचारी (वीररूप) तथा (२) दास (सौम्य रूप)। हनुमान् की जिस मूर्ति के नीचे चण्डी की मूर्ति दबी हो वह वीर हनुमान् हैं। राम के दरबार में हाथ जोड़ कर खड़े हनुमान् की मूर्ति दास रूप की समझनी चाहिये। हनुमान् की पहिली मूर्ति वीरता और पराक्रम का प्रतीक है तो दूसरी नम्रता और दास्य भाव की प्रतिनिधि। इष्ट सिद्धि तथा अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये वीर रूप हनुमान की ही पूजा की जाती है।

भारतवर्ष में हनुमान् की पूजा के प्रचार का श्रेय महात्मा तुलसीदास जी को है। इन्हों ने हनुमान् की पूजा का प्रचुर प्रचार किया। हनुमान् जी तुलसीदास के आराध्य देव थे। इस लिये तुलसीदास ने अपने आराध्य देव की अनेक मूर्तियाँ स्थापित की। काशी में संकटमोचन तथा हनुमान फाटक पर स्थापित मूर्तियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। दक्षिण भारत में भी महावीर जी की विशेष पूजा होती है। इसका श्रेय समर्थ गुरु रामदास जी को हैं जिन्होंने काशी में आकर हनुमान् जी की पूजा का प्रचुर प्रचार देख इसे दक्षिण भारत में फैलाया। वहाँ प्रत्येक ग्राम के रक्षक के रूप में हनुमान् जी की मूर्ति स्थापित मिलती है जिसे 'ग्राम-मारुति' कहते हैं। शिवाजी ने अपने प्रत्येक गढ़ तथा दुर्ग में हनुमान् की मूर्ति स्थापित की थी। महावीर जी युद्ध-प्रिय देवता है। अतः महाराष्ट्रों को यह स्वभावतः प्रिय हैं।

हनुमान् जी बल और पराक्रम के प्रतीक हैं। यह हमारी राष्ट्रीय शक्ति के द्योतक हैं। हमारी युयुत्सा के प्रतिनिधि हैं। अतः यदि देश की नपुंसकता को मिटाकर फिर से जनता को शक्तिशाली बनाना है तो महावीर जी की पूजा करना अत्यन्त आवश्यक है और यह शक्ति तभी आ सकती है जब हनुमान् ही के समान जनता सदाचारी बनना सीखे। हनुमान्जी

महत्त्व

बाल-ब्रह्मचारी थे तथा अपने प्रभु राम के अनन्य सेवक थे। अतः इनके चरित्र से हमें शिक्षायें अवश्य लेनी चाहिये।

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं, वानराणामधीशं, रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥

वैशाख] **अक्षय तृतीया** [शुक्ल

वैशाख की शुक्लपक्ष की तृतीया को अक्षय तृतीया कहते हैं। इसमें पूर्वाह्न-व्यापिनी अर्थात् दोपहर के पहले जो तिथि हो उसे ही लेना चाहिये[1]। जो मनुष्य वैसाख शुक्ल तृतीया को पराह्नव्यापिनी लेता है उसके हव्य को देवता और कव्य को पितर लोग ग्रहण नहीं कर सकते। यह दिन बड़ा ही पवित्र है। इस दिन दिये हुये दान और किये हुये स्नान, होम, जप आदि सभी कर्मों का फल अनन्त होता है। सभी अक्षय—नहीं नष्ट होनेवाले—हो जाते हैं। इसी से इसका नाम अक्षया या अक्षय तृतीया पड़ गया[2]। इस दिन स्नान, दान, जप तथा हवन करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य इस दिन लड्डू और पंखा दान करता है, वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है[3]। इस अक्षय तृतीया को जो मनुष्य गंगास्नान करता है, वह अवश्य ही सब पापों से मुक्त हो जाता

---

१ पूर्वाह्णे तु सदा कार्याः शुक्लामनुयुगादयः।
दैवे कर्मणि पैत्र्ये च कृष्णे चैवाऽपराह्णिका॥ —व्रतराज।

२ वैशाखस्य तृतीयाञ्च पूर्वविद्धां करोति वै।
हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथेति॥ —व्रतराज।

३ यत्किञ्चिद्दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु।
तत्सर्वमक्षयं यस्मात्तेनेयमक्षया स्मृता॥ —भविष्यपुराण।

है[1]। अतः इन सब वर्णनों से सिद्ध होता है कि यह दिन बहुत ही महत्त्वपूर्ण और पवित्र समझा जाता है।

एक समय राजा युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से पूछा—"हे भगवन्! कृपाकर आप अक्षय-तृतीया का माहात्म्य वर्णन कीजिये।" श्रीकृष्ण बोले—

माहात्म्य

हे राजन्! सुनो। इस पुण्यतिथि में पूर्वाह्न में स्नान, जप, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण और दान आदि जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय पुण्य-फल का दाता होता है। इस तृतीया को युगादि तृतीया भी कहते हैं क्योंकि इसी दिन से सतयुग प्रारम्भ होता है।

श्रीकृष्ण ने इस व्रत की कथा को युधिष्ठिर से कहते हुये कहा कि हे राजन्! पूर्वकाल में अत्यन्त निर्धन और सत्यवादी एक श्रद्धालु वैश्य था। वह अधिक

कथा

परिवार वाला होने के कारण सदा व्याकुल रहता था। उसने वैसाख शुक्ल अक्षय तृतीया के व्रत के माहात्म्य को सुना। इस व्रत में दान, जप, हवन और स्नान का महत्फल होता है, इस बात को सुनकर वह वैश्य गंगाजी के किनारे गया और वहाँ जाकर उसने पितर और देवों का पूजन किया। फिर घर आकर उसने सत्तू, दही, पंखा और मिष्ठान्न ब्राह्मणों को दान में दिये। स्त्री के निषेध करने पर भी तथा रोगों से ग्रसित होने पर भी वह अपने धर्म से पराङ्मुख नहीं हुआ। इससे हे राजन्! समय पाकर उस वैश्य का जन्म दूसरी योनि में एक क्षत्रिय के घर हुआ। अपने पहिले दिये गये दान के प्रभाव से वह बड़ा धनाढ्य हो गया। किन्तु इतना अधिक धन पाने पर भी उसकी बुद्धि धर्म से विचलित नहीं हुई, प्रत्युत वह और अधिक धार्मिक हो गया। यह सब अक्षय-तृतीया का ही प्रभाव था।

अक्षय-तृतीया के दिन स्नान, पितृतर्पण तथा देवताओं का पूजन करके वासु-

विधि

देव भगवान् का पूजन करे तथा एकभुक्त ही रहे। इस दिन यवों से हवन करना चाहिये; यवों से ही विष्णु का पूजन करना चाहिये और ब्राह्मणों के लिये यव, गेहूँ, जल से भरा घड़ा, पंखा, सत्तू,

---

१ स्नात्वा, हुत्वा च दत्वा च जप्त्वानन्तफलं लभेत्। —महाभारत

दही और चावलों को दान में देना चाहिये। ऐसा करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। घट दान के समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

एष धर्मघटो दत्तो, ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात्तृप्यन्तु, पितरोऽपि पितामहाः॥
गन्धोदकतिलैर्मिश्रं, सान्नं कुम्भं सदक्षिणम्।
पितृभ्यः सम्प्रदास्यामि, अक्षय्यमुपतिष्ठतु॥

लौकिक रूप

लोक में यह व्रत केवल धार्मिक दृष्टि से ही किया जाता है। इस कारण यह अन्य व्रत तथा उत्सवों की तरह ठाट बाट से नहीं मनाया जाता। मन्दिरों में भी इस दिन ठाकुरजी के भोग में सत्तू रक्खा जाता है और इसी दिन से भगवान् को सफेद वस्त्र धारण कराया जाता है। इसी दिन से धर्मात्मा लोगों की ओर से निर्जल मार्ग में प्रपा (प्याऊ) बैठाई जाती है। इस दिन जौ से हवन करना, जौ से ही विष्णु का पूजन करना और ब्राह्मणों के लिये जल से पूरित घड़ा, पंखा, जव और चना का सत्तू, दही और चावल आदि का दान करना चाहिये।

महत्त्व

वैसाख के महीने में अन्न की नई फसल तैयार हो जाती है। अतः उसे अपने प्रयोग में लाने के पूर्व गृहस्थ लोग ब्राह्मण और देवता को कुछ अंश उस अन्न में से देते हैं। समर्थ तथा धनी लोग जल से तृषित लोगों की प्यास बुझाने के लिये 'प्याऊ' बैठाते हैं। इस प्रकार अक्षय-तृतीया का व्रत हमें त्याग और परोपकार का पाठ पढ़ाता है। ब्राह्मणों को दान देकर हम त्याग करना सीखते हैं और गरीब तथा प्यासे लोगों के लिये जल का प्रबन्ध कर हम परोपकार वृत्ति को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार यह व्रत बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

---

६. परशुराम जयन्ती

परशुरामजी का जन्म इसी वैसाख शुक्ल तृतीया अर्थात् अक्षय तृतीया को रात्रि के प्रथम प्रहर में हुआ था। अतः यह प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य होती है। यदि दो दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो दूसरा व्रत करना चाहिये। इस दिन प्रातः स्नान के अनन्तर संकल्प करके सूर्यास्त तक मौन रक्खे और सायंकाल में परशुरामजी का पूजन करे तथा—

जमदग्निसुतो वीर ! क्षत्रियान्तकरप्रभो !
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर ॥

इस मन्त्र से अर्ध्य देकर रात्रि भर परशुराम का नाम लेकर जप करे।

परशुराम के पिता का नाम जमदग्नि तथा माता का नाम रेणुका है। इसीलिये जमदग्नि के पुत्र होने के कारण इन्हें जामदग्न्य भी कहते हैं। परशुराम स्वभाव ही से क्रोधी थे तथा अपने आन्तरिक क्रोध का प्रत्यक्ष चिह्न 'फरसा' सदा धारण करते थे। ये अपने पिता के बड़े आज्ञाकारी थे। एक बार इनके पिता ने इनकी माता से रुष्ट होकर उसे मार डालने के लिये इन्हें आज्ञा दी। परशुराम ने पिता की आज्ञा मानकर माता को काट डाला। पिता ने प्रसन्न होकर जब वर माँगने को कहा तो परशुराम ने यही माँगा कि मेरी माता पुनः जीवित हो जायँ। पिता के आशीष से वे फिर जीवित हो गईं। एक बार कुछ राजकुमारों ने अश्वमेधीय घोड़े को खोजते समय इनके पिता का तिरस्कार किया था। अतः इस तिरस्कार का बदला चुकाने के लिये क्रोधी परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों को मार कर पृथ्वी को क्षत्रिय-शून्य कर दिया था। राम से इनकी मुठभेड़ प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार परशुराम में ब्राह्म तथा क्षात्र तेज दोनों का समन्वय दिखाई पड़ता है।

परशुराम के जीवन से हमें पितृभक्ति की शिक्षा लेनी चाहिये। इनकी जयन्ती के दिन हमें इस बात को ध्यान में लाना चाहिये कि उन्हीं के समान हम लोग भी पिता और माता के भक्त बनें।

---

७. नृसिंह चतुर्दशी

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को भगवान् नृसिंह का जन्म हुआ था। अतः इस तिथि को नृसिंह चतुर्दशी कहते हैं। इस दिन व्रत किया जाता है जिसका माहात्म्य 'नृसिंह पुराण' तथा 'हेमाद्रि' में नीचे के प्रकार से लिखा है—

"वैशाख शुक्ल चतुर्दशी की रात्रि में मेरा जन्म हुआ। अतः सब लोगों को उसी दिन व्रत करना योग्य है। प्रति वर्ष किया हुआ व्रत समस्त पापों का नाश करता है[1]।" इस व्रत को प्रदोषव्यापी करना चाहिये क्योंकि स्कन्दपुराण में लिखा है कि इसी समय नृसिंह भगवान् का जन्म हुआ था[2]। यदि दैव योग से या सौभाग्यवश किसी दिन पूर्व विद्धा में शनि, स्वाति, सिद्धि और वणिज का सहयोग हो तो उसी दिन व्रत करना चाहिये। इस दिन किया हुआ व्रत कोटि हत्याओं को नष्ट करने वाला होता है[3]। इस व्रत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि बिना जाति, पाँति के भेदभाव से इसे सब वर्ण के लोग कर सकते हैं[4]। अतः इस व्रत को सभी प्राणियों को बड़े प्रेम से करना चाहिये।

---

१ वैशाखे शुक्लपक्षे च, चतुर्दश्यां निशामुखे।
मज्जन्मसंभवं पुण्यं, व्रतं पापप्रणाशनम्॥
वर्षे वर्षे च कर्तव्यं, मम सन्तुष्टिकारणम्।

२ वैशाखस्य चतुर्दश्यां, सोमवारेऽनिलर्क्षके।
अवतारो नृसिंहस्य, प्रदोषसमये द्विजः॥

३ स्वातीनक्षत्रसंयोगे, शनिवारे महद्व्रतम्।
सिद्धियोगस्य संयोगे, वणिजे करणे तथा॥
पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः।
सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं, हत्याकोटिविनाशनम्॥

४ सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते।—नृसिंहपुराण

अत्यन्त प्राचीन काल में कश्यप नामक राजा थे। उनके वीर्य से दिति नामक स्त्री से दो पुत्र उत्पन्न हुये (१) हिरण्याक्ष और (२) हिरण्यकश्यपु। ये दोनों भाई बड़े ही पराक्रमी थे। इसीलिये संभवतः दूसरे

कथा

जन्म में ये रावण और कुम्भकर्ण तथा तीसरे जन्म में शिशुपाल और दन्तवक्र के नाम से प्रसिद्ध हुये। इसी वीर तथा पराक्रमी परन्तु अत्याचारी हिरण्याक्ष को वाराह अवतार धारण कर भगवान् विष्णु ने मारा था। भाई का वध करने वाले विष्णु से बदला लेने की इच्छा से हिरण्यकश्यपु ने ब्रह्मा और महादेव की बड़ी पूजा की। उसकी पूजा से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने कहा कि वर माँगो। हिरण्यकश्यपु ने कहा "मैं रात्रि अथवा दिन में न मरूँ; सूखी अथवा गीली चीज़ से न मरूँ और पशु अथवा मनुष्य से भी न मरूँ।" ब्रह्मा के 'एवमस्तु' कहने पर वह अपने को अजेय मानकर देवता, गौ और ब्राह्मणों को दुःख देने लगा। इसका विवाह जंभासुर की कन्या 'कयाधु' के साथ हुआ था जिससे अनुह्लाद, संह्लाद तथा प्रह्लाद आदि छः पुत्र उत्पन्न हुये। विपरीत वातावरण में उत्पन्न होने पर भी प्रह्लाद जन्म से ही भगवान् का भक्त था तथा सदा एकान्त चिन्तन में समय बिताता हुआ भगवान् का नाम लेता था। जब हिरण्यकश्यपु को यह मालूम हुआ तो वह बड़ा क्रोधित हुआ और उसने प्रह्लाद को एक अच्छे गुरु के पास पाठशाला में पढ़ने के लिये भेज दिया। प्रह्लाद वहाँ भी बालकों को भगवान् की भक्ति करने का उपदेश करता था तथा अपने गुरूजी को भी ऐसा ही करने का समझाता था। पढ़ने में उसका तनिक भी मन नहीं लगता था। गुरू ने इसकी शिकायत उसके पिता के पास की। पिता ने प्रह्लाद को बहुत धमकाया तथा दण्ड दिया। उसने एकबार प्रह्लाद को पहाड़ पर से गिरा दिया, दूसरी बार विष पिलाया परन्तु भगवान् की दया से प्रह्लाद की कुछ भी हानि नहीं हुयी और वे भगवद्भक्ति में तल्लीन रहे। अन्त में उसने प्रह्लाद को होलिका की गोद में बैठा कर उनके शरीर में आग लगा दी परन्तु वह फिर भी जीवित निकल आये। अब अन्ततोगत्वा हिरण्यकश्यपु ने क्रोध में आकर प्रह्लाद को तलवार से मार डालने की ठानी और उससे पूछा कि अब बताओ, तुम्हारा भगवान् कहाँ है? प्रह्लाद ने कहा कि वह सर्वव्यापी है। "क्या वह इस खम्भे

में भी है ?" प्रह्लाद ने कहा—हाँ। इसपर हिरण्यकश्यपु ने जोरों से खम्भे पर तलवार चलायी जिससे खम्भे के दो टुकड़े हो गये। इतने में भक्तों के रक्षक नृसिंह भगवान् खम्भे के बीच से निकले और उस पापी हिरण्यकश्यपु को अपने प्रचण्ड नखों से चीरकर उसका अन्त कर दिया। जैसा कि पहिले लिखा गया है हिरण्यकश्यपु को यह वर मिला था कि न तो वह आदमी से मरेगा और न पशु से और न किसी शस्त्र से। इसलिये भगवान् ने नृ + सिंह (मनुष्य तथा पशु दोनों) का धारण किया तथा अपने नखों से उसे गोदी में कर फाड़ डाला।

हिरण्यकश्यपु के मर जाने पर भगवान् की गोद में बैठे हुये प्रह्लाद ने उनसे प्रश्न किया कि भगवन्! बिना पूर्व पुण्यों के मनुष्य की प्रीति आप में होना असंभव है। अतः कृपा कर यह बतलाइये कि मेरी प्रीति आप में कैसे हुयी। भगवान् ने कहा—"ए प्रह्लाद! प्राचीन काल में तुम वासुदेव नामक ब्राह्मण थे तथा विद्या से रहित होने के कारण एक वेश्या में आसक्त थे। वह वेश्या नृसिंह चतुर्दशी का व्रत करती थी अतः उसी की संगति से तू ने भी मेरे व्रत को किया। उससे ही तेरी प्रीति मुझ में हुयी।"

इस वृत्तान्त को सुनकर प्रह्लाद ने प्रसन्न होकर पूछा कि हे भगवान्! वह व्रत किसका है और किस प्रकार का है जिससे वेश्या प्रेमी मेरी भक्ति आप में हुई? तब भगवान् ने कहा "प्राचीन काल में अवन्ति

महत्त्व

नगरी में वेद का पण्डित एक ब्राह्मण था जिसका नाम सुशर्मा था। नित्य अग्निहोत्र करने से देवता प्रसन्न होगये और उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। इसकी सुशीला नाम की स्त्री थी जिसके पाँच पुत्र थे। तुम उन पाँचों में छोटे थे तथा वेश्यागामी थे। एक दिन उस वेश्या के साथ तुम्हारी लड़ाई होगयी जिससे क्रोध वश तुमने दिन भर भोजन नहीं किया और रात्रि भर जागरण किया। दैवयोग से वह दिन मेरे व्रत का था। इसी कारण तुमको यह परम लाभ प्राप्त हुआ। जो मनुष्य मेरे इस व्रत को करते हैं उनकी सौ कल्प में भी पुनरावृत्ति नहीं होती। स्त्री हो या पुरुष मेरे व्रत को करने से मुक्ति दोनों को प्राप्त होती है।

व्रती को मध्याह्न काल के समय स्वच्छ जल में वैदिक मन्त्रों से स्नान करना

चाहिये । पश्चात् नृसिंह का स्मरण करता हुआ घर पर आवे और गोबर से पृथ्वी

विधि

लेपकर, अष्ट दल कमल बना कर, उस कलश स्थापित करे एवं कलश में ताम्बा और रत्न डाले। उस कलश पर चावलों से भर कर एक डलिया रक्खे और नृसिंह की सोने की मूर्ति को स्थापित करे। मूर्ति को प्रथम पंचामृत में स्नान कराकर पुनः पूजन करे। पूजन षोडशोपचार पूर्वक वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रों के द्वारा होना चाहिये। जो लोग किसी कामना से व्रत को करें उनको पृथ्वी, गाय, तिल, सोना और वस्त्रों सहित शय्या दान देना चाहिये। इसके बाद सुपात्र ब्राह्मणों को भोजन करा कर यथाशक्ति दक्षिणा भी देनी चाहिये। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक नृसिंह की पूजा करता है निश्चय ही उसके अनेक जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

जिस प्रकार हनुमान जी बल के देवता समझे जाते हैं उसी प्रकार से नृसिंह भगवान् शक्ति तथा पराक्रम के प्रतीक हैं। इसीलिये विजय नगर साम्राज्य के परम पराक्रमी राजाओं ने नृसिंह की मूर्ति को अपना राज्य चिह्न बनाया था और इनके बड़े बड़े विशाल मन्दिर स्थापित किये थे। ये मन्दिर आज भी दक्षिण भारत के 'हम्पी' नामक जिले में वर्तमान हैं तथा नृसिंह की पूजा का प्रत्यक्ष प्रमाण दे रहे हैं। दक्षिण भारत में कितने ही ब्राह्मण नृसिंह जी को अपना कुल देवता मानते हैं और उनकी उपासना करते हैं। भक्तों की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिये तथा शरणागत को आश्रय कैसे देना चाहिये इन बातों की शिक्षा हमें नृसिंह भगवान् के चरित्र से मिलती है। अतः ऐसे पराक्रमी तथा भक्त वत्सल नृसिंह भगवान् की जयन्ती मनाना हमारा परम कर्तव्य है।

ज्येष्ठ] **८. गङ्गा-दशहरा** [शुक्ल

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को गङ्गादशहरा कहते हैं। चूँकि गङ्गा जी इसी दिन स्वर्ग लोक से भूतल पर आयीं थी अतः उन्हीं के नाम से इस दिन का नाम गङ्गा दशहरा पड़ गया। स्कन्द पुराण में इस तिथि का महत्त्व तथा व्रत का विधान

बड़े विस्तार के साथ लिखा गया है तथा बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में गङ्गा के आविर्भाव की कथा बड़े रोचक शब्दों में दी हुयी है।

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी सम्वत्सर का मुख है। इस दिन स्नान और विशेष करके दान करना चाहिये। प्रथम तो गङ्गा स्नान ही का माहात्म्य विशेष है। यह न हो सके तो किसी भी नदी में तिलोदक देने का विधान है जिससे मनुष्य दश महा पापों से निवृत्त होकर विष्णु-लोक जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को यदि सोमवार हो और हस्त नक्षत्र हो तो यह तिथि सब पापों को हरण करने वाली होती है। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को बुधवार के दिन हस्त नक्षत्र में गङ्गा जी इस भूतल पर अवतीर्ण हुयी थीं। इसी कारण यह तिथि महान् पुण्य देने वाली मानी गयी हैं। इस तिथि में स्नान, दान और तर्पण करने से दश पापों का हरण होता है। इसी कारण इसको दशहरा कहते हैं[1]।

गङ्गावतरण की कथा

अयोध्या के महाराज सगर की दो रानियाँ थी। एक का नाम था केशिनी और दूसरी का सुमति। केशिनी के असमञ्जस नामक एक पुत्र था जिसके लड़के का नाम अंशुमान था। सुमति के साठ हजार लड़के थे। ये साठ हज़ार भाई राजा सगर के अश्वमेध को ढूढ़ने गये थे। इन्द्र ने अश्वमेध का घोड़ा चुराकर कपिल देव मुनि के आश्रम में बाँध दिया था परन्तु ध्यानावस्थित ऋषि को इस बात की बिल्कुल

---

१ ज्येष्ठस्य शुक्लादशमी, सम्वत्सरमुखा स्मृता।
तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत, दानं चैव विशेषतः ॥ १ ॥
यां काञ्चित्सरितां प्राप्य, प्रदद्याच्च तिलोदकम्।
मुच्यते दशभिः पापैः विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २ ॥
ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु भवेत्सौम्यदिनं यदि।
ज्ञेया हस्तर्क्षसंयुक्ता सर्वपापहरा तिथिः ॥ ३ ॥
दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठमासे बुधेऽहनि।
अवतीर्णा यतः स्वर्गात् हस्तर्क्षे च सरिद्वरा ॥ ४ ॥
हरते दशपापानि तस्माद् दशहरा स्मृता ॥ ५ ॥

खबर नहीं थी। सगर के पुत्र जब ऋषि के आश्रम में पहुँचे तो उनसे घोड़े का समाचार पूछा। ध्यानावस्थित महर्षि के कुछ उत्तर न देने पर वे आश्रम में घोड़े को खोजने लगे। ढूढ़ने पर जब उन्होंने यह देखा कि यज्ञीय घोड़ा इसी आश्रम में बँधा है तब वे महर्षि पर बहुत क्रोधित हुये और उन्हें अनुचित शब्द भी कहा। तपस्या में बाधा पहुँचाये गये मुनि ने अपनी आखें खोली और मुनि के तेज से वे साठो हजार भाई जल कर भस्म हो गये। जब अंशुमान इस समाचार से दुःखी होकर कपिल मुनि के आश्रम पर गये तब गरुड़ जी ने कहा कि अंशुमान् ! तुम्हारे साठ हजार चचा अपने पापाचरण के कारण कपिलदेव के क्रोध से भस्म होगये हैं। यदि तुम इनकी मुक्ति चाहते हो तो स्वर्ग से गङ्गा को यहाँ लावो।

महाराज सगर के देहावसान होने पर मन्त्रियों ने अंशुमान को राजा बनाया। कुछ दिनों तक राज्य करने के बाद अपने पुत्र दिलीप को राज्य देकर अंशुमान् दारुणतपस्या करने के लिये पर्वत पर चले गये और तपस्या करते ही वे पंचत्व को प्राप्त हो गये परन्तु गङ्गा को स्वर्ग से पृथ्वी पर नहीं ला सके। दिलीप ने भी गङ्गा लाने का प्रयत्न किया परन्तु उन्हें भी सफलता नहीं मिल सकी।

दिलीप का पुत्र भगीरथ बड़ा ही प्रतापी तथा धर्मात्मा राजा था। उसने अपने पितरां को तारने के लिये गङ्गा को पृथ्वी पर लाने की प्रतिज्ञा की और राज्य छोड़ कर तपस्या के लिये निकल पड़ा तथा गोकर्ण-तीर्थ पर तपस्या करने लगा। इन्द्रियों को जीत कर पंचाग्नि के ताप से तपना, उर्ध्वबाहु रहना और मास में एक बार आहार करना—यही उसका नियम था। इस प्रकार घोर तपस्या करते हुये जब बहुत वर्ष बीत गये, जब वह सूख कर काँटा होगया तब उसकी भीषण तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा उसके पास गये और कहा—राजन् ! तुमने घोर तप किया है। अतः प्रसन्न होकर वर माँगो। भगीरथ ने कहा—भगवन् ! मेरे पूर्वजों के उद्धार के लिये गङ्गा जी को दीजिये। बिना गङ्गा के उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। ब्रह्मा ने कहा—'एवमस्तु'। परन्तु गङ्गा की वेगवती धारा को धारण करने की शक्ति शिव के अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं है। अतः उनको जाकर प्रसन्न करो।

राजा भगीरथ ने शिव की आराधना एक अँगूठे पर खड़े होकर की। अतः तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने यह वरदान दिया कि मैं अवश्य ही गङ्गा को अपने शीश पर धारण करूँगा। इस प्रकार से गङ्गा जी ब्रह्मा की दया से स्वर्ग लोक से भूतल पर आयीं परन्तु यहाँ आते ही भगवान् शिव की जटाओं में विलीन होगयीं। गङ्गा के अभिमान को तोड़ने के लिये शिव ने अपने जटाजूट को ऐसा फैलाया कि वर्षों तक खोजने पर गङ्गा को बाहर निकलने का मार्ग न मिला। तब भगीरथ ने फिर शिव की स्तुति की। शिव ने प्रसन्न होकर गङ्गा को हिमालय में ब्रह्मा के द्वारा बनाये गये बिन्दुसर नामक तालाब में छोड़ दिया। तब गङ्गा की धारा इस पृथ्वी पर बहने लगी। राजा भगीरथ दिव्य रथ पर चढ़े हुये आगे आगे चलते थे और गङ्गा की धारा पीछे पीछे। इस प्रकार गङ्गा के भूतल पर आने से अपूर्व शोभा हुयी। गङ्गा मार्ग के अनेक स्थानों को पवित्र करती हुयी उस स्थान पर पहुँची जहाँ सगर के साठ हजार लड़के मरे पड़े थे तथा उनके भस्म का ढ़ेर लगा हुआ था। गङ्गा के जल का स्पर्श करते ही वे सब मुक्ति को प्राप्त हो गये। उस समय ब्रह्मा ने प्रकट होकर भगीरथ से कहा—राजन्! तुमने अपूर्व तप किया है। अतः तुम्हारा नाम अमर हो गया है। गङ्गा का नाम आज से भागीरथी होगा जो सदा तुम्हारे नाम को स्मरण कराता रहेगा। ब्रह्मा का यह वरदान सचमुच सत्य निकला। आज भी गङ्गा भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध हैं और परम तपस्वी राजा भगीरथ के नाम को अजर तथा अमर बनाये हैं। यही गङ्गावतरण की संक्षेप में कथा है।

गङ्गा दशहरा का व्रत गङ्गा, जमुना, नर्मदा, गोदावरी तथा कावेरी आदि नदियों के किनारे स्थित स्थानों में बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। परन्तु

लौकिक स्वरूप

विशेषतया गङ्गा के किनारे स्थित शहरों—हरिद्वार, काशी, प्रयाग आदि—में विशिष्ट प्रकार से बड़े ठाट बाट से होता है। इन पंक्तियों के लेखक को काशी में गङ्गा-दशहरा के उत्सव को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वहाँ गङ्गापुत्र अर्थात् पण्डा लोग बड़ी तैयारी मनाते हैं। बड़ी बड़ी नावों को महीनों से सजवाया जाता है। उसमें फूल पत्ती तथा झण्डियाँ लगायी जाती हैं। गङ्गा-दशहरा के दिन रात के समय

नाव में गङ्गा जी की मूर्ति स्थापित करते हैं और उसका यथा विधि पूजन करके रात्रि भर जागरण करते हुये हरि कीर्तन करते हैं। गङ्गा में बहती हुयी बड़ी बड़ी नावे एक छोटा 'आरमेडा' का दृश्य उपस्थित करती हैं। जिन स्थानों में गङ्गा जी का मन्दिर है वहाँ उस मन्दिर में गङ्गा जी की विशेष पूजा होती है। हरिद्वार में हरि की पैड़ी के पास ब्रह्म कुण्ड में एक गङ्गा जी का मन्दिर है। इस दिन वहाँ बड़े ठाट बाट से पूजा होती है और भक्त लोग स्नान करते समय गङ्गा के मन्दिर की जल में प्रदक्षिणा करते हैं। इस दिन गङ्गा की पूजा करके दान, कथा तथा कीर्तन किया जाता है और ब्राह्मण भोजन भी कराया जाता है। गङ्गा स्नान का माहात्म्य दशविध पातकों की निवृत्ति के लिये माना गया है जिससे पुनर्जन्म का भय नहीं रहता। यों तो सभी दिन गङ्गा स्नान का माहात्म्य है परन्तु इस दिन गंगा में स्नान करने का विशेष पुण्य माना जाता है। इस दिन जो मनुष्य गङ्गा-स्नान करता है वह सब प्रकार के पातकों से मुक्त होकर सीधे स्वर्गलोक को जाता है।

प्राचीनता तथा महत्त्व

गङ्गा हमारी अत्यन्त प्राचीन नदी है। यह हमारी सभ्यता की उद्गमस्थली तथा पुण्य कर्मों की लीला-भूमि है। गङ्गा का उल्लेख ऋग्वेद में—

इमम्मे गङ्गे यमुने सरस्वति, शतद्री स्तोत्रं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये सुणोह्या सुषोमया॥

इस ऋचा में मिलता है। इसके बाद उपनिषद्, महाभारत, रामायण तथा पुराण आदि समस्त ग्रन्थों में गङ्गा का वर्णन पाया जाता है। रामायण में राम के द्वारा गङ्गा पार करने की कथा प्रसिद्ध ही है।

गङ्गा अनेक दृष्टि से हमारे लिये महत्त्वपूर्ण है। यदि हम यह कहें कि हिन्दू सभ्यता का उद्गम गङ्गा के ही पवित्र किनारों पर हुआ तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। हमारे ऋषि, महर्षियों ने इसी पुण्यतोया नदी के किनारे ध्यानावस्थित हो उपनिषदों के गूढ़ रहस्यों को सोचा था तथा विभिन्न दर्शनों के मर्म का उद्घाटन किया था। अतः गङ्गा का सांस्कृतिक महत्त्व बहुत ही अधिक है।

गङ्गा जल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यदि यह महीनों या वर्षों तक रक्खा रहे तो भी इसमें कीटाणु नहीं उत्पन्न होते। यह बात पूर्व तथा पाश्चात्य डाक्टरों प्रमाण द्वारा सिद्ध कर दिया है। अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से भी गङ्गाजल पूत तथा स्वास्थ्य-वर्धक है। गङ्गा के जल से इस देश में बहुत बड़ी सिंचाई का काम किया जाता है जिससे लाखों एकड़ जमीन में अन्न पैदा होता है। अतः आर्थिक दृष्टि से भी गङ्गा का कुछ कम महत्त्व नहीं हैं। धार्मिक दृष्टि से गङ्गा के महत्त्व को बतलाना व्यर्थ है। इसीलिये गङ्गा की पूजा करना हमारा परम कर्तव्य है। शास्त्रों में गङ्गा की महिमा का बड़ा वर्णन मिलता है—

नमामि गङ्गे त्वद् पादपंकजं, सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम्।
भुक्तिञ्च मुक्तिञ्च ददासि नित्यं, भावानुसारेण सदा नराणाम्॥ १॥
अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा;
विलोलद्वानीरं तव जननि! तीरं श्रितवताम्।
सुधातः स्वादीयः सलिलभरमातृप्ति पिबतां,
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम्॥ २॥

ज्येष्ठ]

९. निर्जला एकादशी

[शुक्ल

ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को निर्जला एकादशी कहते हैं। अन्य महीनों में एकादशी को फलाहार करते हैं परन्तु इस दिन फल तो क्या जल भी ग्रहण नहीं किया जाता। इसीलिये इस एकादशी का नाम निर्जला है। चूँकि यह एकादशी ग्रीष्म ऋतु में बड़े कष्ट तथा तपस्या से की जाती है अतएव अन्य एकादशियों से इसका महत्त्व सर्वोपरि है। यदि विधि पूर्वक यह एकादशी निर्जल की जाय तो बड़ा ही पुण्य होता है; आयु तथा स्वास्थ्य बढ़ता है मरने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। व्यास जी के कथनानुसार यह निश्चित रूप से सत्य है कि अधिमास सहित एक वर्ष की पचीस एकादशी न की जा सके तो केवल निर्जला

एकादशी करने से ही पूरा फल प्राप्त हो जाता है[1]। निर्जला व्रत करने वाला पुरुष अपवित्र अवस्था में आचमन के सिवाय एक बूँद भी जल ग्रहण न करे। यदि जल किसी प्रकार उपयोग में ले लिया जाय तो उससे व्रत भंग हो जाता है। दृढ़ता पूर्वक नियम पालन के साथ निर्जल उपवास करके द्वादशी को स्नान करे और सामर्थ्य के अनुसार सोना और जलयुक्त कलश देकर भोजन करे तो सम्पूर्ण तीर्थों में जाकर स्नान दानादि करने के समान फल होता है।

निर्जला एकादशी को भीमसेनी एकादशी भी कहते हैं। इसका कारण यही है कि बहुभोजी भीमसेन ने भी इस व्रत को किया था। वह अन्य कोई एकादशी-व्रत नहीं करते थे। परन्तु इस दिन उन्होंने भी निर्जल व्रत किया। इसीलिये उन्हीं के नाम से इसका नाम 'भीमसेनी एकादशी' पड़ गया।

एक दिन भोजनभट्ट भीमसेन ने व्यास जी के मुँह से प्रत्येक एकादशी को निराहार रहने का नियम सुनकर विनम्र भाव से निवेदन किया कि महाराज!

कथा

मुझसे कोई व्रत नहीं किया जाता। दिन भर बड़ी तीव्र क्षुधा बनी ही रहती है। अतः आप कोई ऐसा उपाय बतला दीजिये जिसके प्रभाव से स्वतः सद्गति हो जाय। तब व्यास जी ने कहा कि तुमसे वर्षभर की सम्पूर्ण एकादशी नहीं हो सकती तो एक केवल निर्जला एकादशी कर लो, इसी से साल भर की एकादशी करने के समान फल मिल जायेगा। तब भीम ने वैसा ही किया और अन्त में उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुयी।

जिस व्रत के करने में जितनी अधिक तपस्या करनी पड़े, जितना अधिक कष्ट उठाना पड़े उसका उतना ही महत्त्व समझा जाता है। ज्येष्ठ के महीने में दिन

---

१ वृषस्थे मिथुनस्थेऽर्के; शुक्ला ह्येकादशी भवेत्।
ज्येष्ठे मासि प्रयत्नेन; सोपोष्या जल वर्जिता॥
स्नाने चाचमने चैव; वर्जयेन्नोदकं बुधः।
संवत्सरस्य या मध्ये; एकादश्यो भवन्त्युत॥
तासां फलमवाप्नोति अत्र मे नास्ति संशयः।
(हेमाद्रौ—महाभारते व्यासवचनम्)

सबसे बड़ा होता है, प्यास अधिक लगती है। ऐसी दशा में इस व्रत को निर्जल (बिना जल पीये) करना सचमुच ही बड़ी साधना का काम है। बड़े कष्ट तथा सहन शक्ति ही से यह पूरा हो सकता है। चूँकि इस व्रत के करने में सबसे अधिक कष्ट उठाना पड़ता है अतः इसका महत्त्व सर्व श्रेष्ठ रक्खा गया है। निर्जला एकादशी के दिन अन्न खाना पाप समझा जाता है। अतः प्रायः सभी मनुष्य इस व्रत को बड़े प्रेम से करते हैं। जो लोग किसी कारण जल पीये बिना नहीं रह सकते वे लोग फलाहार करते तथा जल पीते हैं। जो मनुष्य साल भर की दूसरी एकादशी न भी करता हो वह यह एकादशी अवश्य ही करता है। पेटू भीमसेन ने भी इस एकादशी को किया था अतः इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

महत्त्व

आषाढ़] [शुक्ल

१०. रथयात्रा

आषाढ़ शुक्ला द्वितिया को रथयात्रा का उत्सव मनाया जाता है। इस दिन पुष्य नक्षत्र में सुभद्रा सहित भगवान् को रथ में बिठा कर यात्रा करानी चाहिये। स्कन्द पुराण में इस त्यौहार का विशेष वर्णन पाया जाता है। यों तो भारतवर्ष भर में सर्वत्र ही रथ-यात्रा उत्सव मनाया जाता है परन्तु इस दिन जो बृहत्समारोह जगन्नाथपुरी में दिखाई पड़ता है उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। चूँकि रथयात्रा का उत्सव जगन्नाथ जी से विशेष सम्बन्ध रखता है अतः जगन्नाथ की पुरी, उनका मन्दिर, मूर्ति आदि का कुछ विशेष विवरण अनुचित न होगा।

जगन्नाथपुरी की स्थिति उड़ीसा प्रान्त में समुद्र के किनारे है। यह स्थान भारतवर्ष के प्रधान चार धामों में से एक धाम समझा जाता है। यहाँ शंकराचार्य के द्वारा स्थापित गोवर्धनपीठ भी है जिसके आचार्य अभी भी शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। पुरी की बस्ती नीची भूमि पर बसी है। बीच में ऊँची बालूदार भूमि होने के कारण बस्ती का

जगन्नाथपुरी

जल समुद्र में नहीं गिरता। यही कारण है कि पुरी की जलवायु विशेष स्वास्थ्य प्रद नहीं है परन्तु समुद्र का किनारा बड़ा ही स्वास्थ्यवर्धक है और बहुत से लोग अपने स्वास्थ्य को सुधारने के लिये यहाँ आते हैं। यह पुरी मथुरा और काशी के समान न व्यापार प्रधान है और न अयोध्या की तरह मन्दिर-प्रधान। यहाँ के सर्वस्व जगन्नाथ जी ही है और केवल उन्हीं के मन्दिर के कारण इस तुच्छ स्थान को इतना महत्त्व प्राप्त हुआ है। यह पुरी डेढ़ मील चौड़ी और तीन मील लम्बी है तथा अपने ढंग की निराली है। शिल्प और कला का नाम भी यहाँ इस मन्दिर के साथ बचा हुआ है। इस स्थान में पण्डों की अधिकता तथा अनेक सम्प्रदायों के मठ भी है। यहाँ के कच्चे मकान विलक्षण हैं। दीवारों का काम बाँसो की टट्टियों पर मिट्टी पोत कर लिया जाता है तथा उनकी छत भी उसी प्रकार की हल्के छप्पर की होती है ऊँची कुर्सी रखने और चबूतरे बनाने की यहाँ प्रथा है। जो मकान बस्ती के निकास पर समुद्र के तट पर बने हैं वे देखने योग्य हैं। वैष्णव, शैव और शाक्त सभी मत के लोग यहाँ रहते हैं। इस प्रकार यह स्थान छोटा होने पर स्वास्थ्य तथा पवित्रता की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

इस पुरी में जगन्नाथ जी का मन्दिर ही सब कुछ है। यह मन्दिर पुरी के बीच में तथा समुद्र से एक मील के अन्तर पर बसा हुआ है। यह ऊँची भूमि पर स्थित है जिसे नीलगिरि कहते हैं। इस मन्दिर का बाहरी घिराव (घेरा) ६६६ फीट लम्बा और ६४५ फीट चौड़ा है। इसका कँगूरेदार प्राकार (चहारदिवारी) लगभग २२ फीट ऊँचा है तथा प्रत्येक ओर बीच में फाटक है। इन सब फाटकों में पूर्व की ओर का फाटक सबसे अच्छा है। इस फाटक का चौखट नक्काशीदार है और काले पत्थर का बना हुआ है। फाटक का किवाड़ साल की लकड़ी का बना हुआ है। द्वार के अगल बगल दो सिंह की मूर्तियाँ है। इसी से इसका नाम सिंहद्वार है।

जगन्नाथ जी का मन्दिर

सिंहद्वार के आगे काले रङ्ग के एक ही पत्थर का बना हुआ ३५ फीट ऊँचा एक सुन्दर अरुणस्तम्भ है जिसके सिरे पर सूर्य, और सारथी अरुण-देव की मूर्ति है। कुछ लोगों का कहना है कि महाराष्ट्र राजा इसे

अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में कोणार्क के सूर्य-मन्दिर से यहाँ लाये थे। बाहरी प्राकार के भीतर ४५० फीट लम्बा और ३०० फीट चौड़ा दूसरा घेरा है जिसके भीतर जगन्नाथ जी तथा अन्य देवताओं के बहुत से मन्दिर हैं।

जगन्नाथ जी के गर्भ मन्दिर के आगे जगमोहन है और जगमोहन के आगे नृत्य-मन्दिर तथा इसके आगे भोग मन्दिर है। चारो परस्पर मिले हुये हैं। कहा जाता है कि जगन्नाथ जी के वर्तमान मन्दिर को ११८४ ई० में बनवाना आरम्भ किया गया था और ११९८ में चौदह वर्ष के बाद यह बन कर तैयार हुआ था। इसका निर्माता राजा अनङ्ग भीमदेव बतलाया जाता है।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि देवताओं की मूर्तियाँ केवल पत्थर की ही नहीं बनती बल्कि लकड़ी, पत्थर, गोबर तथा मिट्टी सब की बनती है। गणेश जी की गोबर की बनी मूर्ति प्रसिद्ध ही है। भला 'गोबर-गणेश' को कौन नहीं जानता? मिट्टी की बनी हुयी शिव की मूर्ति से पार्थिव पूजा की जाती है। इसी प्रकार जगन्नाथ जी की मूर्ति पत्थर की न बनकर लकड़ी की बनी हुई है। संभवतः अन्य अन्य किसी देवता की मूर्ति लकड़ी की नहीं होती। जगन्नाथ जी के मन्दिर में जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा तीनों की मूर्ति विराजमान है तथा तीनों 'दारुमय' हैं। रथयात्रा के कुछ दिन पहिले प्रति वर्ष इन तीनों देवताओं की मूर्तियाँ बनायी जाती है। भक्तों का विश्वास है कि जिस लकड़ी से जगन्नाथ आदि की मूर्तियाँ बनायी जाती हैं वह लकड़ी आपसे आप अनायास समुद्र में बहती हुयी आती है। जो कुछ भी हो जगन्नाथ की मूर्ति का प्रति वर्ष निर्माण भी उनकी विशेषता ही है। जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की बड़ी बड़ी नासिका, गोल गोल बड़े नेत्र और हाथ लुञ्ज होता अर्थात् हाथ आधा कटा हुआ होता है। यह एक विचित्र बात है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह किसी देवता के शाप का फल है। इस प्रकार जगन्नाथ जी की मूर्ति अनेक कारणों से अद्भुत और अलौकिक है।

जगन्नाथ जी की मूर्ति

जगन्नाथपुरी का सबसे बड़ा त्यौहार रथयात्रा है। इस दिन यात्रियों की जो अपार भीड़ इनके दर्शन के लिये होती है उसका वर्णन करना कठिन है।

यह उत्सव आषाढ़ शुक्ला द्वितिया से शुरु होकर कई दिनों तक रहता है। इस

रथयात्रा का उत्सव

दिन भगवान् अपने रथ पर बैठ यात्रा करते हैं इसीलिये इस उत्सव का नाम रथयात्रा पड़ गया है। आज के दिन सिंहद्वार से होकर जगन्नाथ जी, बलभद्र और सुभद्रा सहित रथ पर बैठते हैं। तीन रथों में तीनों मूर्तियाँ अलग अलग बैठायी जाती हैं। जगन्नाथ जी का रथ ४५ फीट ऊँचा, ३५ फीट लम्बा और उतना ही चौड़ा होता है। इसमें सात फीट व्यास के १६ पहिये लगे रहते हैं। बलभद्र जी का रथ ४४ फीट ऊँचा होता है और उसमें १४ पहिये लगे रहते हैं। सुभद्रा जी के रथ की ऊँचाई ४३ फीट है तथा उसमें १२ पहिये लगे होते हैं। इन विभिन्न रथों की ऊँचाई और लम्बाई का विचार करके इनकी विशालता का कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है। ये रथ प्रति वर्ष नये बनाये जाते हैं। सिंहद्वार पर रथों में बैठकर भगवान् जनकपुर की ओर जाते हैं। इन विशाल रथों को खींचने के लिये ४२०० पुरुष लगाये जाते हैं जो केवल इसीलिये नियुक्त हैं उन्हें मन्दिर की ओर से माफी भूमि मिली हुई है। इसके अतिरिक्त लाखों नर नारी भक्ति तथा श्रद्धा से जगन्नाथ जी के रथ को खींचकर—जो लम्बी लम्बी रस्सियों से बँधे होते हैं—अपने को सौभाग्य शाली मानते हैं। प्राचीन काल में कुछ पुण्यात्मा लोग भक्ति के आवेग में आकर जगन्नाथ जी के चलते रथ के नीचे सो जाते थे और परम धाम को सिधारते थे। परन्तु अंग्रेजी सरकार ने यह प्रथा अब बन्द कर दी है। जगन्नाथ जी के रथ को खींचते समय लाखों नर नारियों का जमघट होता है वह वास्तव में दर्शनीय होता है। भक्त जनता भगवान् पर रुपये तथा गिन्नियाँ भेंट चढ़ाती है। भगवान् रथ में बैठ कर जनकपुर में जाते हैं जो ३ मील दूर है। वहाँ वे तीन दिन रहते हैं जहाँ लक्ष्मी जी उनसे मिलने के लिये आती हैं। इसके बाद भगवान् वहाँ से लौट कर आते हैं और अपने असली स्थान पर विराजमान हो जाते हैं। इस अवसर पर छुआछूत का कुछ भी विचार नहीं होता और भक्त लोग भगवान् के महाप्रसाद (पकाया हुआ भात) को लेकर घर लौटते है। अन्य स्थानों में भी रथयात्रा का उत्सव होता है।

भगवान् को रथ में बिठाकर शहर में घुमाते हैं परन्तु जगन्नाथपुरी का उत्सव अद्वितीय होता है।

रथ यात्रा के दिन ऊँच, नीच का भेद भाव भुलाकर सभी वर्ण तथा जाति के लोग भगवान् के रथ को खींचते हैं और छुआछूत के भेद को दूर कर भगवान् का प्रसाद ग्रहण करते हैं। इस बात से हम लोगों को शिक्षा लेनी चाहिये। भगवान् के दरबार में सभी मनुष्य बराबर हैं। उनमें न कोई छोटा है और न बड़ा। अतः हमे अपने सभी भाइयों से मिल जुलकर रहना चाहिये; आपस में प्रेम-भावना को जागृत करना चाहिये और अपना संगठन कर जाति तथा देश की शक्ति की वृद्धि करनी चाहिये। यही रथयात्रा के उत्सव का महत्त्व है।

महत्त्व

—०—

आषाढ़] ११ हरिशयनी एकादशी [शुक्ल

आषाढ़ शुक्ला एकादशी को हरिशयनी एकादशी कहते हैं क्योंकि इसी दिन विष्णु भगवान् क्षीरसागर में शयन करते हैं। पुराणों में तथा भाद्रपद की एकादशी के माहात्म्य में यह भी लिखा है कि विष्णु भगवान् इस दिन से चार मास तक बलि के द्वार पर पाताल में रहते हैं और कार्तिक शुक्ला एकादशी को पीछे पधारते हैं। इसीलिये इस एकादशी को हरिशयनी और कार्तिक वाली एकादशी को हरि-प्रबोधिनी कहते हैं। चूँकि इन चार महीनों में भगवान् विष्णु क्षीरसागर में शयन करते हैं अतः विवाह आदि कोई भी शुभ कार्य इन दिनों में नहीं किया जाता। आषाढ़ से लेकर कार्तिक तक ये चार महीने जिनमें भगवान् शयन करते रहते हैं 'चातुर्मास' के नाम से प्रसिद्ध है। इन दिनों में साधु, महात्मा लोग एक ही स्थान पर रहकर तपस्या करते हैं और भजन करते हुये समय बिताते हैं। इस एकादशी का माहात्म्य ब्रह्मवैवर्तपुराण और महाभारत में विशेष रूप से पाया जाता है। प्राचीन काल में पाण्डव, राजा रुक्माङ्गद और

अम्बरीष पर बड़े बड़े संकट आये परन्तु इसी एकादशी व्रत के करने से भगवान् ने उनकी रक्षा की।

कथा

महाभारत में एकादशी के उत्पत्ति की कथा इस प्रकार लिखी मिलती है :—

प्राचीन काल में देवता और राक्षसों में प्रचण्ड युद्ध हुआ करता था। एक समय प्रह्लाद के पौत्र मृदुमान्यदैत्य ने शंकर की उग्र आराधना की जिससे प्रसन्न होकर शिव ने उससे वर माँगने को कहा। तब उसने ब्रह्मा, विष्णु तथा आपसे मेरा पराजय न हो, ऐसा वर माँगा। शिव ने यह वरदान दे दिया। परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों से लड़ाई छेड़ दी। शिव जी उसे स्वयं वर देने के कारण मारने में असमर्थ थे। शिव वर को नष्ट कर देना ब्रह्मा और विष्णु को भी अभिष्ट नहीं था। अतः फल स्वरूप सब देवताओं के साथ ये तीनों देव त्रिकूट पर्वत पर धात्री वृक्ष के नीचे एक गुफा में छिप कर बैठ गये। वहाँ सहज ही में अन्नाभाव के कारणउपवास और वर्षा के कारण स्नान होने लगा। सब देवताओं की एकता और तपस्या से एक बड़ी भारी शक्ति उत्पन्न होगयी और देवताओं की प्रार्थना से इसी शक्ति ने गुफा के द्वार पर बैठे हुये मृदुमान्य दैत्य का बध किया। इसी शक्ति का नाम एकादशी है। इसमें सभी देवताओं का तेज सम्मिलित है अतः सभी वैष्णव तथा शैव इसे करते हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में इस एकादशी का माहात्म्य बड़े विस्तार के साथ लिखा है। एक बार नारद जी से पूछा कि भगवान्! इसका माहात्म्य कहिये। तब

माहात्म्य

ब्रह्मा जी ने कहा—इस एकादशी का व्रत सर्वदा पापों को नाश करने वाला, इच्छित वस्तु का दाता है। जो लोग इसको नहीं करते हैं वे अवश्य ही नरकगामी होते हैं। इस पद्मा नाम की एकादशी को करने से हृषीकेश भगवान् प्रसन्न होते हैं! प्राचीन काल में मान्धाता नामक एक चक्रवर्ती राजा था। उसके राज्य में सब प्रजा आनन्द से रहती थी। परतु किसी कारणवश लगातार तीन साल से वृष्टि न होने के कारण बड़ा भारी अकाल पड़ गया। प्रजा बड़ी व्याकुल होगयी। उसने राजा के पास

जाकर अपना सब कष्ट कह सुनाया। राजा यह सब समाचार सुनकर अत्यन्त चिन्तित हुये। वे इसका कारण जानने के लिये जङ्गल में अंगिरा ऋषि के पास गये। महर्षि के द्वारा समाचार पूछने पर राजा ने सब कष्ट कह सुनाया। महर्षि ने ध्यान लगा कर दुर्भिक्ष का सब कारण जान लिया और बोले कि इस सत्ययुग में थोड़े से पाप का भी बड़ा भारी फल होता है। तुम्हारे राज्य में एक वृषल तपस्या कर रहा है। यदि प्रयत्न करके वह न मारा गया तो यह दुर्भिक्ष और भी अधिक बढ़ेगा। यह सुनकर राजा ने कहा कि भगवन्! तपस्या करनेवाले उस वृषल को मारना नहीं चाहता। इसलिये उसके परिहार का कोई अन्य मार्ग हो तो अच्छा है। तब महर्षि ने कहा—यदि ऐसी बात है तो पद्मा नाम की एकादशी के व्रत को करना चाहिये। जिससे अवश्य ही वृष्टि होगी और अकाल दूर हो जायेगा। यह सुनकर राजा अपने राज्य में लौट आया और अपनी समस्त प्रजा के साथ इस एकादशी के व्रत को किया। व्रत के करने से बड़ी वृष्टि हुई। वृष्टि होने से अन्न खूब पैदा हुआ और अन्न होने से अकाल जाता रहा। अतः इस व्रत का माहात्म्य बहुत ही अधिक है।

एकादशी का व्रत चारों वर्ण के लोग करते हैं। लोग प्रायः दिन भर उपवास रहते हैं और सन्ध्या को फलाहार करते हैं। कितने लोग जो उपवास नहीं कर सकते, वे केवल एक समय भोजन करते हैं।

लौकिक स्वरूप

परन्तु जो लोग एक भुक्त भी नहीं रह सकते वे भी एकादशी को चावल तो बिल्कुल ही नहीं खाते। वे रोटी खाकर यथासंभव व्रत का नियम पालन करने की चेष्टा करते हैं। एकादशी के दिन चावल खाना बिल्कुल निसिद्ध है। इस दिन फलाहार भी बहुत थोड़ी मात्रा में करना चाहिये। जो लोग दिन भर व्रत रह कर शाम को अत्यधिक फलाहार करते हैं वे इस व्रत के उद्देश्य को नष्ट कर देते हैं। कुछ लोग दिनभर बिल्कुल निराहार रहते हैं और रात्रि में जागरण करते हैं। महाराष्ट्र देश में पण्ढरपुर नामक तीर्थ-स्थान में इस दिन बड़ा उत्सव होता है। अनेक महात्मा लोग वहाँ आते हैं। वारकरी सम्प्रदाय के लोग बड़े ठाट से विट्ठल भगवान् का कीर्तन करते हैं।

एकादशी का व्रत आत्मशुद्धि और आत्म-चिन्तन का दिन है। सब मनुष्यों

को चाहिये इस दिन व्रत रहकर अपने शरीर तथा आत्मा की शुद्धि और रात्रि में जागरण कर भगवान् का नाम लेकर अपने हृदय को पवित्र बनावे।

आषाढ़] **१२. व्यास-पूर्णिमा** [शुक्ल

आषाढ़ मास की पूर्णिमा 'व्यास-पूर्णिमा' के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि इस दिन व्यास अर्थात् गुरु की पूजा की जाती है। प्राचीन भारत में पाठशाला अथवा विद्यालयों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों से शुल्क नहीं लिया जाता था। वे अपनी पढ़ाई पढ़ने के लिये कोई मासिक फीस नहीं देते थे। वे साल भर में केवल एक बार अपने आचार्य की पूजा पत्र, पुष्प तथा यथाशक्ति दक्षिणा को चढ़ा कर किया करते थे। यह पूजा केवल गुरु तक ही सीमीत नहीं थी बल्कि माता, पिता, भ्राता आदि सबकी होती थी। यद्यपि गृहस्थ का यह परम कर्तव्य है कि वह अपने श्रेष्ठ लोगों की पूजा नित्य प्रति करें परन्तु यह दिन इसलिये निर्धारित कर दिया कि यदि कोई अन्य दिन न भी करे तो इस दिन अवश्य ही करे।

इस दिन प्रातःकाल में स्नान, पूजादि करके अपने गुरू अथवा अन्य श्रेष्ठ लोगों के पास जाय। उनको किसी उच्चासन पर बैठाकर प्रणाम करे। बाद में माला पहिनाकर आरती करे। तदनन्तर फल, फूल तथा द्रव्य जो कुछ बन पड़े वह उनके चरणों पर अर्पित कर दे। पश्चात् उनके आशीर्वाद को प्राप्त कर घर जाय।

बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि इस सुन्दर प्रथा का अब धीरे-धीरे लोप हो रहा है। बहुत से लोग तो यह भी नहीं जानते कि व्यास-पूर्णिमा किसे कहते है? फिर भी काशी में इसका बड़ा प्रचार है। इस दिन सब पाठशालायें बन्द रहती हैं। विद्यार्थी पत्र, पुष्प तथा दक्षिणा लेकर बड़ी श्रद्धा के साथ अपने गुरू के पास जाते हैं और उनकी पूजा करके आशीर्वाद को प्राप्त करते हैं। गुरुओं के प्रति श्रद्धा और आदर को दिखलानेवाला यह व्रत बहुत ही पवित्र तथा सुन्दर है। अतः इसका सर्वत्र प्रचार होना चाहिये।

---

१३. नाग-पंचमी

श्रावण शुक्ला पंचमी को नाग पंचमी कहते हैं क्योंकि इस दिन नाग अर्थात् सर्प की पूजा होती है। नाग पंचमी षष्ठि विद्धा लेनी चाहिये क्योंकि नागों की प्रसन्नता षष्ठि विद्धा में ही होती है। हेमाद्रि के प्रभास खण्ड में लिखा है कि श्रावण शुक्ला पंचमी को घर के दरवाजे के दोनों ओर गोबर से नाग की मूर्ति बनानी चाहिये। यह नाग पंचमी मनुष्यों को तो क्या, देवों को भी दुर्लभ है। जो मनुष्य बारह वर्ष तक इसको करता है, वह बहुत बड़े फल का भागी होता है[1]। चतुर्थी के दिन एक बार भोजन कर पुनः पंचमी की रात को भोजन करना चाहिये। चाँदी, स्वर्ण, काष्ठ अथवा मिट्टी की लेखनी के द्वारा हल्दी तथा चन्दन से पाँच फणवाले पाँच सर्पों को बनावे। पञ्चमी के दिन खीर, पंचामृत, कमल के पुष्प, गन्ध और धूप आदि से पाँचों नागों का पूजन करे। पूजन के पश्चात् लड्डू और खीर से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। नागों में बारह प्रधान नाग हैं—अनन्त, वासुकी, शेष, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालीय, तक्षक और पिङ्गल। इनमें से एक एक नाग की एक एक मास में पूजा होनी चाहिये। प्रति मास ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये और पूजा करानेवाले व्यास को गाय और सोने का बना हुआ नाग देना चाहिये। इस दिन भक्ति-पूर्वक नाग की पूजा करनी चाहिये और पृथ्वी को नहीं खोदना चाहिये।

प्राचीन काल में एक किसान अपने परिवार के साथ मणिपुर में रहता

---

१ श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे तु पार्वति।
द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्वणाः॥
सा तु पुण्यतमा प्रोक्ता, देवानामपि दुर्लभा।
कुर्याद् द्वादशवर्षाणि पञ्चम्यां च वरानने॥

था। उसके दो लड़के और एक कन्या थी। एक दिन की बात है जब वह खेत जोत रहा था उस समय हल की फाल में बिंधकर साँप के तीन बच्चे मर गये। उस समय सर्पों की माता नहीं थी। दूसरे दिन उसे ज्ञात हुआ कि मेरे बच्चे हल के फाल से मार डाले गये। अतः उसने अपने बच्चे के मारनेवाले से बदला लेने का संकल्प किया। रात के समय नागिन उस किसान के घर गई जिसने उसके बच्चे को मार डाला था। वहाँ जाकर उसने क्रमशः किसान, उसकी स्त्री तथा दोनों बच्चों को डस लिया और इस प्रकार चारों की मृत्यु तत्क्षण हो गई। दूसरे दिन नागिन किसान की लड़की को डसने के लिये गई। उस लड़की को मालूम हो गया था कि नागिन ने मेरी माँ बाप तथा भाई को मार डाला है। अतः उससे बचने के लिये उसने नागिन के सामने कटोरा भर दूध और धान का लावा रख दिया। उसके बाद उससे क्षमा माँगी। वह दिन नाग पञ्चमी का था लेकिन यह बात उसे नहीं मालूम थी। नागिन उसके ऊपर बहुत प्रसन्न हुई और वर माँगने को कहा। लड़की ने यह वर माँगा कि मेरे माता-पिता और दोनों भाई पुनः जीवित हो जायँ और जो आज के दिन नागों की पूजा करें उसे कभी भी नाग के डसने की बाधा न हो। नागिन लड़की को वरदान देकर चली गई। कहा जाता है कि उसी दिन से संसार में नाग पञ्चमी के पूजन का प्रचार हुआ।

कथा

नाग की पूजा का सर्वत्र प्रचार है। इस दिन प्रातःकाल उठ कर घर की लड़कियाँ गोबर लेकर उससे सारे मकान की दीवाल पर एक रेखा बना देती है और घर के प्रधान दरवाजे के दोनों तरफ नाग की दो मूर्तियों को चित्रित कर देती हैं। शहरों में जहाँ गोबर का प्रयोग नहीं किया जाता वहाँ नाग के कागज के बने हुये चित्रों को फाटक के ऊपर चिपका देते हैं। काशी में नाग पंचमी के दिन प्रातःकाल छोटे-छोटे लड़के "नाग लो, भाई नाग लो; छोटे गुरु का, बड़े गुरु का, नाग लो भाई नाग लो" चिल्लाते हुए प्रायः पाये जाते हैं। नाग की मूर्ति बनाने के पश्चात् उनकी यथा-विधि पूजा की जाती है और एक कटोरे में धान का लावा और दूध भरकर किसी एकान्त स्थान में रख दिया जाता है। लोगों का विश्वास है कि उस दिन

लौकिक स्वरूप

नागराज आते हैं और दूध पीते हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं इस बात का अनुभव किया है। उसके घर नाग पंचमी के दिन अवश्य कोई न कोई सर्प दिखाई पड़ता है और वह बिना किसी को कुछ नुकसान पहुँचाये फिर अन्तर्ध्यान हो जाता है। लोगों की ऐसी धारणा है कि जो इस दिन नाग पंचमी को नाग की पूजा करता है उसे सर्प के काटने का भय नहीं रहता। यदि सर्प काट भी ले तो उसके विष का कुछ असर नहीं होता। इस तिथि को 'नाग पचैयाँ' भी कहते हैं जो 'नाग पञ्चमी' का अपभ्रंश रूप है। कहीं कहीं इस दिन कुश्ती का दंगल भी होता है जिसमें बड़े-बड़े पहलवान भाग लेकर अपनी शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। काशी में इस दिन 'नाग कुँआ' नामक स्थान पर पण्डितों का बड़ा भारी जमघट होता है वे वहाँ पर अपनी शारीरिक शक्ति का तो नहीं परन्तु वाक्-शक्ति का बड़ा ही सुन्दर प्रदर्शन करते हैं। वहाँ सब लोग नागकुँआ का जल पीते हैं और नाग का दर्शन कर घर आते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है नाग-पूजा की प्रथा आर्य नहीं है बल्कि अनार्य है। या तो यह प्रथा द्रविड़ लोगों से ली गई है अथवा उन जंगली तथा बर्बर जातियों जिनमें नाग-पूजा का प्रचुर प्रचार पाया जाता है।

प्राचीनता

परन्तु इन विद्वानों का यह कथन समीचीन नहीं प्रतीत होता। नाग की पूजा का भारतीय संस्कृति से घनिष्ट संबंध है, यदि हम यह कहें तो इस कथन में तनिक भी अत्युक्ति न होगी। पृथ्वी नागों के राजा शेषनाग के सिर पर स्थित मानी गयी है। स्वयं कृष्णजी ने विषधर कालिय नाग को नाथ कर ब्रज मण्डल को बचाया था। सर्पों को नष्ट करने के लिये महाराज जनमेजय का यज्ञ करना प्रसिद्ध ही है। कश्यप की स्त्री कद्रू के गर्भ से सर्पों की उत्पत्ति की कहानी को कौन नहीं जानता? भारतीय कला में नाग की प्रतिमा का जो स्थान है वह कलाविदों से छिपा हुआ नहीं है। आज भी बङ्गाल में सर्पों की अधिष्ठात्री देवी 'मनसा' की पूजा का प्रचुर प्रचार है तथा 'मनसा' की उपासना, पूजा तथा स्तुति में सैकड़ों ग्रन्थों का निर्माण हो गया है जो 'मनसा सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है। इन सब प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि नाग-पूजा अनार्य नहीं बल्कि आर्य है क्योंकि इनकी पूजा का विधान चिरकाल से पाया जाता है।

नाग पंचमी का व्रत हमको अपनी विशाल हृदयता तथा उदारता का स्मरण कराता है। संसार में शायद हिन्दू ही जाति इतनी उदार है कि वह सर्प जैसे दुष्ट जीव की पूजा करती है। धार्मिक सहिष्णुता का भाव हमारे अन्दर इतना घर कर गया है कि हम शत्रु को भी आश्रय ही नहीं देते बल्कि उसकी पूजा भी करते हैं। इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अतः इस व्रत से हमें उदारता और सहिष्णुता की शिक्षा लेनी चाहिये और अपने चरित्र में इन दोनों को अपनाना चाहिये।

श्रावण] **१४. श्रावणी** [शुक्ल

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को दो त्यौहार एक ही दिन मनाये जाते हैं (१) श्रावणी और (२) रक्षाबन्धन। रक्षाबन्धन को प्रायः सभी लोग जानते हैं परन्तु श्रावणी के त्योहार को बहुत ही कम लोग जानते हैं और इसका प्रचार भी बहुत कम है। श्रावणी ही का दूसरा नाम उपाकर्म है। प्राचीनकाल में इस त्यौहार का बड़ा महत्त्व था परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि इसका महत्व उतना नहीं रहा। बहुत लोग इसके नाम से भी परिचित नहीं हैं। श्रावणी का त्यौहार साल भर के समस्त कायिक, वाचिक तथा मानसिक पापों को नष्ट कर पवित्र बनने के लिये किया जाता है। श्रावणी-कर्म करते समय ऐसी ही एक प्रार्थना की जाती है।

केवलं पावनार्थाय मादशामकृतात्मनाम्।
कृतस्थिते त्वयि स्नामि; प्रसीद च पुनीहि माम्॥

प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से यह मालूम होता है कि प्राचीन समय में ऋषि, महर्षि लोग श्रावणी पूर्णिमा के दिन उपाकर्म कराके पढ़ाना प्रारम्भ करते थे और माघ-कृष्ण में उत्सर्जन होकर पढ़ाई बन्द कर देते थे। बाद के शेष महीनों में अभ्यसित ज्ञान को अनुभव और क्रिया रूप में परिणत किया

जाता था। इस प्रकार श्रावणी का दिन हमारे प्राचीन पठन-क्रम का प्रथम दिवस था। इसीलिए इसका महत्त्व इतना अधिक है। जिस प्रकार आज जुलाई से स्कूल और कालेजों में नया सेशन—पढ़ाई का नया क्रम—शुरू होता है उसी प्रकार प्राचीन समय पठन-पाठन क्रम इसी श्रावणी से प्रारम्भ होता था। बहुत से लोगों का विचार है कि श्रावणी ब्राह्मणों का, विजयादशमी क्षत्रियों का दीपावली वैश्यों का तथा होली शूद्रों का त्यौहार है। परन्तु यह धारणा नितान्त भ्रम-मूलक है। श्रावणी केवल ब्राह्मणों ही का त्यौहार नहीं है बल्कि यह उस द्विज-ब्राह्मण-क्षत्री तथा वैश्य-जाति का त्यौहार है जो वेद पठन-पाठन के अधिकारी हैं।

आह्निक सूत्रावली और उपाकर्म पद्धति में लिखा है कि उपनीत ब्रह्मचारी और द्विजों को चाहिये कि ग्राम के समीप अच्छे तालाब या नदी के किनारे पर जाकर उपाध्याय की आज्ञानुसार शास्त्रोक्त विधि से श्रावणी को करे। प्रारम्भ में शरीर की पवित्रता के लिये दूध, दधि, घृत, गोबर और गोमूत्र का पंचामृत बना कर पान करे और यथा शास्त्र तैयार की हुई वेदी पर हविष्यान्न से आहुतियाँ दें। इसी कार्य को उपाकर्म कहते हैं। तदनन्तर जल-प्रवाह के सामने जल में खड़े होकर और हाथ जोड़ कर सूर्य की स्तुति करे। इसके पश्चात् अरुन्धति और सप्तर्षियों का पूजन करे। अन्त में दधि और सत्तू की आहुति दे।

श्रावणी का प्रचार दक्षिण भारत, गुजरात आदि में अधिक है। आजकल बहुत कम लोग इस त्यौहार को करते हैं। बहुत हुआ तो जाकर किसी नदी में स्नान कर आये। हवन आदि तो शायद ही कोई करता है। यह श्रावणी हमारे प्राचीन उपाकर्म का स्मारक है अतः इसे अवश्य ही करना चाहिये।

श्रावणी का त्यौहार हमें स्वाध्याय से प्रमाद मत करो—स्वाध्यायात् न प्रमदितव्यम्—इसकी शिक्षा देता है तथा मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध रहने का आदेश करता है। अतः सब द्विजों को चाहिये कि इस त्यौहार को करते हुये अपने स्वाध्याय में लगे रहें जिससे देश और जाति सब का कल्याण हो क्योंकि इस देश को जितनी अविद्या से हानि हुयी है उतनी और किसी वस्तु से नहीं हुई है।

१५. रक्षा-बन्धन

श्रावणी पूर्णिमा को दूसरा त्यौहार मनाया जाता है उसका नाम रक्षा-बन्धन है, जिसे 'राखी' भी कहते हैं। इसका सर्वत्र प्रचुर प्रचार है। संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलों में यह 'सलूनो' के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है, इसदिन रेशम, ऊन या सूत की राखी हाथ में बाँधी जाती है और यथाशक्ति लोग राखी बाँधने वाले ब्राह्मण को दक्षिणा देते हैं।

कथा

एक बार युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण भगवान् से पूछा कि "भगवन् समस्त रोग और अशुभों को नष्ट करने वाला कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि जिसके एक ही बार कर लेने से वर्ष भर की रक्षा हो जाय।" यह सुन-कर भगवान् ने कहा "ए पाण्डवों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर! इन्द्राणी ने इन्द्र की विजय कामना से प्राचीन काल में जो कुछ किया था, उस पुराने इतिहास को सुनो। देवता और असुरों में एक बार बारह वर्ष तक सतत युद्ध होता रहा, जिसमें असुरों ने सम्पूर्ण देवताओं के साथ इन्द्र पर विजय प्राप्त कर ली[1]। इस महान् पराजय से दुःखी होकर एक समय इन्द्र बृहस्पति से कहने लगे कि इस समय न तो मैं यहाँ ठहरने में समर्थ हूँ और न अन्यत्र कहीं भागने का ही अवसर है। अतः अब मुझको लड़ना अनिवार्य होगया है। इन्द्राणी इस प्रकार दोनों के वार्तालाप को सुनकर बीच ही में बोल उठीं—"पति देव! आप

---

१ सर्वं रोगोपशमनं, सर्वाशुभविनाशनम्।
सत्कृत्कृतेनाब्दमेकं येन रक्षाकृतो भवेत्॥
शृणु पाण्डवशार्दूल! इतिहासं पुरातनम्।
इन्द्राण्या यत्कृतं पूर्वं, शक्रस्य जयवृद्धये॥
देवासुरमभूत् युद्धं पुराद्वादशवार्षिकम्।
तत्रासुरैर्जितः शक्रः सह सर्वैः सुरोत्तमैः॥

निर्भय रहें, मैं ऐसा उपाय करती हूँ जिससे अवश्य ही आपकी विजय होगी।" दूसरे दिन प्रातः काल ही श्रावणी पौर्णिमा थी। इसलिये इन्द्राणी ने ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्ति वाचन करा कर इन्द्र के हाथ में रक्षा की पोटली बाँध दी। रक्षा-बन्धन से सुरक्षित इन्द्र ने जब दैत्यों पर चढ़ाई की, तब काल के समान इन्द्र को देखकर सब दैत्य भाग गये। हे युधिष्ठिर! यह सब रक्षाबन्धन का प्रभाव था।

महाराज युधिष्ठिर ने रक्षाबन्धन के माहात्म्य को सुनकर श्रीकृष्ण से फिर पूछा कि "भगवन्! इन्द्र आदि देवों ने किस विधि से कब और किस तिथि को रक्षा-बन्धन-व्रत किया, वह कृपा कर मुझे बतलाइये।" यह

विधि

सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा "बुद्धिमान् मनुष्य श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन प्रथम तो स्नान करे; पुनः देवता, पितर और सप्तर्षियों का तर्पण करे। दोपहर के बाद ऊनी या सूती पीत वस्त्र लेकर, उसमें चावल रखकर, गाँठ लगा कर और स्वर्ण के रङ्ग के समान हल्दी अथवा केसर से रङ्ग कर एक पात्र में रख दे। घर को गोबर से लिपवा कर और चावलों से चौका पुरवा कर घट की स्थापना करे। घड़े में अन्न भर दे और पीले कपड़े में लच्छे से लिपटी हुयी एक या अनेक चावल की पोटलियों को रख दे। यजमान स्वयं चौकी या ऊँचे आसन पर बैठे और घर का पूजन शास्त्रोक्त विधि से पुरोहित के द्वारा करावे। पूजन के पश्चात् पुरोहित उस पोटली को यजमान के हाथ में बाँधे और अन्य लोगों के भी हाथों में बाँधे। परन्तु इस रक्षाबन्धन को वेदपाठी ब्राह्मण के द्वारा ही बँधवाना चाहिये। रक्षा बाँधते समय ब्राह्मण को यह मन्त्र बोलना चाहिये—

येन बद्धो बली राजा, दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वामभिबध्नामि, रक्षे मा चल, मा चल॥

जो मनुष्य इस प्रकार से रक्षाबन्धन के व्रत को करता है, वह एक साल तक किसी प्रकार की आधि व्याधि से दुःखी नहीं रहता।"

राखी का त्यौहार प्रायः समस्त हिन्दुस्तान में मनाया जाता है। परन्तु जो पद्धति भविष्य पुराण और हेमाद्रि में लिखी है वैसा नहीं किया जाता है। आज-

कल पोटली बाँधने का प्रचार नहीं है बल्कि उसके स्थान पर कच्चा सूत हल्दी में रँग कर बाँधा जाता है। अब कुछ शौकीन लोग रेशम की राखी भी बाँधने लगे हैं और उनके लिये रेशम की बड़ी सुन्दर राखी बाजार में बिकती है। परन्तु ऐसी राखियों में वह प्राचीन भावना नहीं रहती। वह तो केवल हाथ का आभूषण मात्र होती है। आजकल प्रायः ब्राह्मण लोग इस दिन प्रत्येक गृहस्थ के घर जाते हैं और उनके हाथ में राखी बाँधते हैं। उनमें से कितने तो इतने अपढ़ होते हैं कि राखी बाँधने का मन्त्र भी नहीं जानते। जिस गृहस्थ के हाथ में ब्राह्मण राखी बाँधता है वह उसको दो, चार पैसा अवश्य दक्षिणा रूप में देता है। बस इसी कार्य से रक्षा-बन्धन की इति श्री समझ ली जाती है। कहीं कहीं पर बहिन भाई के हाथ में राखी बाँधती है। बहन, बेटियाँ उत्तम राखी, नारियल, रूपया, मिठाई, अक्षत, गन्ध और पान लाती हैं। पहिले भाई के मस्तक पर तिलक करती हैं, फिर राखी बाँधती है। तदन्तर मिठाई, रुपया और नारियल हाथ में देकर और पान खिला कर बलैया लेती है। उस समय भाई बहन को जो भी द्रव्य देना चाहता है, उसी थाल में डाल देता है और यदि नया वस्त्र देना होता है तो उसे पहना देता है। दक्षिण देश के किसी किसी भाग में स्त्री भी पुरुष के हाथ में राखी बाँधती है। यद्यपि यह प्रथा अन्य प्रान्तों में अप्रचलित है और कुछ अनोखी सी जान पड़ती है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर जान पड़ेगा कि यह प्रथा ऐतिहासिक है तथा परम्परा से चली आ रही है। प्राचीन काल में इन्द्राणी ने इन्द्र के हाथ में असुरों पर विजय प्राप्त करने के लिये रक्षा को बाँधा था और फल स्वरूप इन्द्र असुरों पर विजयी हुये।

लौकिक स्वरूप

रक्षा बन्धन का पर्व हमारा महान् पर्व है। यह हमें अभयदान देने वाला पुण्य दिवस है। यह हमारे मुर्दा दिलों में जोश भरने वाला और शत्रु को रणाङ्गण में पछाड़ने के लिये उत्साहित करने वाला पवित्र त्यौहार है। यह प्रतिपक्षी के ऊपर विजय प्राप्त करने की हमारी एषणा का प्रतीक है। यह हमारी शक्ति, साहस और विजय भावना का मूल-स्रोत है। जैसा कि पौराणिक कथा से प्रकट होता है, रक्षा-बन्धन का त्यौहार

महत्त्व

लड़ाई में जाने वाले योद्धा को अभयदान देने का व्रत है। जैसे इन्द्राणी ने इन्द्र के हाथ में रक्षा बाँध कर उन्हें शत्रु के आक्रमणों से सुरक्षित किया था उसी प्रकार से हम लोगों का अटूट विश्वास है कि रण-प्रयाण के पहिले, माता, स्त्री या बहन योद्धा के हाथ में यदि राखी बाँध दे तो वह अजेय हो जाता है। राजपूत-काल में यह धारणा बड़े प्रचण्ड रूप में थी। अतः जब कोई राजपूत योद्धा लड़ाई पर जाने लगता था तब उसकी स्त्री या बहन उसके माथे में विजय का तिलक लगाती थी और हाथ में शत्रु से रक्षा का बन्धन बाँध कर उसे बिदा करती थी। योद्धा इस भावना से प्रेरित होकर कि अब मैं अजेय हूँ, शत्रु से भिड़ जाता था और अन्त में मैदान मार कर ही दम लेता था। ऐसे अनेक उदाहरण राजपूताने के इतिहास में भरे पड़े हैं। इस राखी के बन्धन ने अनेक बुज़दिल पतियों के दिल में जोश की लहर पैदा कर दी थी और अनेक पस्तहिम्मत भाइयों के हृदय में उत्साह की आँधी बहाई थी। स्वदेशी आन्दोलन के समय में सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इस रक्षाबन्धन का राष्ट्रीय रूप प्रदान किया था तथा इससे बंगाल में एकता और जागृति पैदा कर दी थी। सचमुच असुरों को परास्त करने के लिये तथा एकता और संगठन करने के लिये रक्षाबन्धन का त्यौहार महामन्त्र है। अतः इसे समस्त भारत-वासियों को अवश्य बड़े धूमधाम से करना चाहिये।

भाद्र] **१६. कृष्ण जन्माष्टमी** कृष्ण

भादो की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण जन्माष्टमी का त्यौहार मनाया जाता है क्योंकि इसी दिन भगवान् कृष्ण ने रात्रि के बारह बजे रोहिणी नक्षत्र में बुधवार को मथुरा नगरी में जन्म ग्रहण किया था। रामनवमी तथा कृष्ण जन्माष्टमी हम लोगों के परम पुनीत पर्व हैं क्योंकि रामनवमी के दिन मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी ने तथा जन्माष्टमी साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अवतार

ग्रहण किया था। एक ने अपने जन्म ग्रहण से दुष्टों का दलन कर लोक-मर्यादा की स्थापना की तो दूसरे ने अपनी अलौकिक लीला से जनता का मनोरंजन कर हमे कर्मयोग का पाठ पढ़ाया। इसलिये ये दोनों ही तिथियाँ हमारे लिये अत्यन्त पवित्र हैं। जन्माष्टमी का पर्व सर्वत्र मनाया जाता है परन्तु कृष्ण की जन्मस्थली तथा क्रीड़ास्थली व्रज की प्रधान नगरी मथुरा में इसकी शोभा अपूर्व होती है।

काल-निर्णय

कृष्ण जन्माष्टमी के काल निर्णय के संबंध में बड़ा झगड़ा है। कुछ लोग इस दिन शुद्धा तिथि मानते हैं तो कुछ विद्धा। वैष्णव लोग रोहिणी नक्षत्र का होना आवश्यक समझते हैं। इसीलिये जन्माष्टमी कभी दो दिन और कभी तीन दिन तक मनायी जाती है। धर्मसिन्धु में उदय व्यापिनी तिथि को ग्रहण करना लिखा है जैसा कि नीचे के श्लोक से प्रकट है:—

व्रतोपवासस्नानादौ, घटिकैकापि या भवेत्।
उदये सा तिथि ग्राह्या, विपरीता तु पैतृके॥

स्मार्तलोग रात्रि में यदि अष्टमी हो तो उसी दिन व्रत करते हैं चाहे उदय उस तिथि को भले ही न हुआ हो। परन्तु वैष्णव लोगों के लिये रोहिणी नक्षत्र आवश्यक है। अतः रात्रि में अष्टमी तिथि होनेपर नक्षत्र न होने के कारण वे जन्माष्टमी पहिले दिन न मानकर दूसरे दिन मनाते हैं। जन्माष्टमी के दिनों में भिन्नता का यही कारण है।

कथा

सत्ययुग में केदार नामक एक राजा राज्य करता था। जब वह वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ तब वह अपने पुत्र को राज्य देकर जंगल को चला गया। इस राजा को वृन्दा नामक एक कन्या थी जिसने अविवाहित रहकर प्रचण्ड व्रत किया। उसके कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् प्रसन्न हुये और बोले—वर माँग। उस लड़की ने कहा कि यदि आप प्रसन्न हैं तो आप मेरा पति बनना स्वीकार कीजिये। भगवान् ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। जिस स्थान पर उस कन्या ने तपस्या की थी वह स्थान वृन्दावन के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

मधु नामक एक दैत्य ने यमुना के दक्षिण किनारे पर एक शहर बसाया जिसका नाम 'मधुपुरी' पड़ा। वही 'मधुपुरी' आज मथुरा के नाम से प्रसिद्ध है। यह मधुपुरी द्वापरयुग में शूरसेन देश की राजधानी थी और यहाँ पर अन्धक, वृष्णि, यादव तथा भोज आदि सात वंशों ने राज्य किया था।

द्वापरयुग में भोजवंशी उग्रसेन नामक राजा यहाँ राज्य करता था। इसके लड़के का नाम कंस था जो बहुत ही दुष्ट, दुराचारी तथा प्रजा-पीड़क राजा था। इसने अपने पिता को गद्दी से उतार दिया और स्वयं राजा बन बैठा। कंस की एक बहन थी जिसका नाम देवकी था। उसका विवाह वसुदेव नामक एक यादव-वंशी सरदार के साथ हुआ था जो उग्रसेन के प्रधान आदमियों में से थे।

एक समय जब कंस अपनी बहन को उसकी ससुराल लिये जा रहा था तब रास्ते में यह आकाशवाणी हुई "हे कंस! जिस देवकी को तू बड़े प्रेम से लिये जा रहा है उसी में तेरा काल बसता है। उसी के गर्भ से उत्पन्न आठवां बालक तुझको मारेगा, इसपर कंस ने अपने मन में यह सोचा कि हम वसुदेव ही को मार डाले तो सारा झंझट ही दूर हो जाय। अतः उसने उन्हें मारने के लिये तलवार निकाली। परन्तु देवकी ने उससे प्रार्थना करते हुये कहा—मुझे जो कोई लड़का पैदा होगा उसे मैं तुमको दे दूँगी। अतः मेरे पति को मारने से तुम्हें क्या फायदा होगा? कंस ने बहन की प्रार्थना स्वीकार कर ली और वसुदेव को मारने का विचार छोड़ दिया। परन्तु वे कहीं भाग न जाँय इसलिये वसुदेव और देवकी को कठिन कारागार में डाल दिया।

कुछ काल के अनन्तर देवकी के गर्भ से एक पुत्र पैदा हुआ और वह कंस के सामने रक्खा गया। कंस ने यह सोचकर कि आठवें बालक से मुझे मृत्यु का भय है। अतः उस बालक को छोड़ दिया परन्तु नारद जी के कुटिल उपदेश के कारण फिर उसे मरवा डाला। इसके बाद देवकी के गर्भ से जितने बालक हुये उन सब को कंस ने मरवा डाला। जब उसको देवकी के आठवें गर्भ की बात मालूम हुयी तब उसने करागार में बड़ा पहरा बैठा दिया जिससे कोई निकल न सके।

भादों मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी भी थी। रोहिणी नक्षत्र। रात्रि के बारह बज रहे थे। चारों तरफ निःस्तब्धता का राज्य था। घनघोर अन्धकार

छाया हुआ था और प्रचण्ड मूसलाधार वर्षा हो रही थी। ऐसे समय में भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। भगवान् की दया से सब पहरेवाले उस समय सो रहे थे और जेल के फाटक आप-से-आप खुल गये थे। उस समय यह आकाशवाणी हुयी कि ए वसुदेव ! गोकुल में नन्द के एक कन्या पैदा हुयी है। इस बालक को वहीं पहुँचा आवो और उस कन्या को लावो। वसुदेव नवजात बालक श्रीकृष्ण को सूप में उठाकर उसी अन्धेरी रात में गोकुल को ले चले। मार्ग में जमुना नदी को बड़ी कठिनाई से पार किया। वहाँ जाकर कृष्ण को नन्द के घर रख कर लड़की को उठा लाये। दूसरे दिन प्रातःकाल जब कंस को पुत्री होने का समाचार मिला तो उसने उसे मँगवाया और उसे पकड़ कर ज्योंहीं पत्थर पर पटकना चाहा त्योंहीं वह लड़की हाथ से छूट कर आकाश में उड़ गयी और बोली कि ए मूर्ख ! मुझे मारने से क्या होगा। तुझको मारने वाला तो गोकुल में पैदा हो गया है। कंस कृष्ण को गोकुल में सुरक्षित जानकर बड़ा व्याकुल हुआ और उनको मार डालने के लिये तरह-तरह के राक्षसों को भेजना प्रारम्भ कर दिया। पूतना, अघासुर, बकासुर आदि कई राक्षसी और राक्षस मायावी रूप बनाकर कृष्ण को मारने के लिये भेजे गये। परन्तु कृष्ण ने उन सब को मार कर रसातल को पहुँचा दिया। कृष्णजी गोकुल में रह कर गौवों को चराते थे और गोपियों के साथ रासलीला किया करते थे। बड़े होनेपर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं मथुरा गये। वहाँ उन्होंने कंस को मारकर यमलोक को पहुँचा दिया और अपने माता-पिता को कारागार के कष्ट से मुक्त किया। इस प्रकार उन्होंने शूरसेन देश की प्रजा को दुष्ट कंस के अत्याचार से बचाया।

भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन का दूसरा रूप हमें महाभारत में देखने को मिलता है जहाँ वे एक आदर्श दूत तथा प्रचण्ड कूटनीतिज्ञ के रूप में दिखलाये गये हैं। जब दुर्योधन पाण्डवों को सुई की नोंक के बराबर भी जमीन देने को तैयार न था तब श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से दूत बनकर सन्धि का प्रस्ताव पास में लेकर दुर्योधन के दरबार गये और उससे कम-से-कम पाँच गाँव देकर सन्धि कर लेने की सलाह दी। परन्तु हठी दुर्योधन के न मानने पर महाभारत की लड़ाई छिड़ गयी। लड़ाई के प्रारम्भ में ही अपने कुटुम्बियों को देखकर

अर्जुन को जो मोह हुआ था उसे श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता का उपदेश देकर दूर किया और उसे लड़ने के लिये तैयार किया। अर्जुन को उन्होंने सदा यही उपदेश दिया कि :—

'तस्मादुत्तिष्ठकौन्तेय ! युद्धाय कृतनिश्चयः ॥'

बाद में जयद्रथ वध के अवसर पर, द्रोणाचार्य के वध के लिये तथा कर्ण को पराजित करने के लिये श्रीकृष्ण ने जिस अद्भुत चातुरी तथा कूटनीति से काम लिया यह महाभारत पाठकों को विदित ही है। सच तो यह है कि यह कृष्ण की ही बुद्धिमानी तथा राजनीति-पटुता का फल था कि महाभारत में पाण्डवों को विजयश्री मिली।

अपने जीवन के अन्तिम समय में श्रीकृष्ण मथुरा छोड़ द्वारका चले गये और वहीं द्वारावती नामक नगरी बसायी थी। यहीं पर उनके पुराने मित्र सुदामा उनसे मिलने के लिये गये थे जिन्हें उन्होंने प्रचुर धन-धान्य दिया और उनकी चिरकालीन दरिद्रता को सदा के लिये दूर कर दिया। संक्षेप में कृष्ण का यही जीवन-चरित है।

कृष्ण जन्माष्टमी के दिन किसी पवित्र नदी में प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। व्रती को चाहिये कि इसकी पूर्व रात्रि में लघु आहार करे और रात्रि में जितेन्द्रिय रहे। अष्टमी को उपवास के दिन स्नानादि नित्यक्रिया से निवृत्त होकर सूर्य, सोम, अग्नि, आकाश आदि को नमस्कार करके पूर्व या उत्तर मुख बैठे। हाथ में जल, फल, कुश आदि लेकर संकल्प करे। मध्याह्न के समय काले तिलों के जल से स्नान करके देवकी के लिये 'सूतिका-गृह' नियत करे। उसे स्वच्छ और सुशोभित करके सूतिका के उपयोगी सब सामग्री यथाक्रम रक्खे। सूतिकागृह में कोमल बिछौने के मञ्च पर अक्षतादि का मण्डल बनवाके उस पर शुभ-कलश स्थापित करे तथा उसके ऊपर सोना या चाँदी आदि की मूर्ति स्थापित करे। मूर्ति में सद्यः प्रसूत श्रीकृष्ण को स्तनपान कराती हुयी देवकी हों और लक्ष्मीजी उनका चरण स्पर्श करती हों। इसके बाद बारह बजे रात को श्रीकृष्ण के प्रकट होने की भावना करके वैदिक विधि से भगवान् का षोडशोपचार पूजा करे। बाद में भगवान् का नाम लेकर तथा स्तोत्र पाठकर

शास्त्रीय स्वरूप

शेष रात्रि को बितावे। उसके बाद दूसरे दिन जिस नक्षत्र में व्रत किया हो उसके समाप्त होनेपर पारण करे। इस प्रकार यह व्रत किया जाता है।

लौकिक रूप

जन्माष्टमी का त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। जिनके यहाँ श्रीकृष्ण की मूर्ति रहती है वे उसका बड़ा शृंगार करते हैं। फूल-पत्तों से मन्दिर को खूब सजाते हैं तथा उसे आकर्षक बनाते हैं। जिस मन्दिर में श्रीकृष्ण की जितनी सुन्दर झाँकी हो उसकी उतनी ही प्रशंसा होती है। आज दिनभर लोग उपवास रहते हैं। परन्तु कुछ लोग फलाहार भी करते है। रात्रि को भगवान् के मन्दिर में एक बड़ा खीरा रख दिया जाता है। जब रात को १२ बजते हैं तो समझ लिया जाता है कि अब भगवान् का जन्म हो गया। तब घड़ी, घंट, शंख आदि बजाकर भगवान् के जन्मोत्सव को मनाते हैं। बाद में सब लोग फल, पंजीरी, पंचामृत तथा हलुवे का प्रासाद लेते हैं और भगवान् का दर्शन कर अपने-अपने घर जाते हैं। कुछ लोग रात्रि भर जागकर पाठ भी करते हैं। मथुरा तथा वृन्दावन में जन्माष्टमी का त्यौहार बड़े ठाट-बाट से मनाया जाता है। मथुरा के द्वारिकाधीश के मन्दिर में सवालाख रुपयों का हीरे से जटित भगवान् का एक झूला है। वह इसी दिन निकाला जाता है और भगवान् इसी पर झुलाये जाते हैं। यह त्यौहार वहाँ लगातार दस-बारह दिनों तक रहता है और रोज ही प्रचुर मात्रा में प्रसाद बाँटा जाता है। वहाँ के मन्दिरों में श्रीकृष्ण की अपूर्व झाँकियाँ इन दिनों दर्शन करने को मिलती हैं जो अन्य दिनों में दुर्लभ हैं। जब भगवान् की 'बरही' होती है तब इसकी समाप्ति समझी जाती है। संभवतः होली और दीवाली को छोड़कर अन्य कोई त्यौहार इतने उत्साह और शान से नहीं मनाया जाता है।

श्रीकृष्ण का अलौकिक चरित्र

भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र अद्भुत और अलौकिक है। उनकी इसी अलौकिकता को देखकर कुछ पाश्चात्य विद्वान् यह कहने लगे हैं कि कृष्ण एक नहीं अनेक थे। परन्तु यह सब कपोलकल्पित बातें हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के चरित में इतनी अद्भुत तथा लोकोत्तर बातें पायी जाती है जिससे प्राचीन शास्त्रकार इन्हें अवतार न मान कर साक्षात् ईश्वर मानते हैं—कृष्णस्तु भगवान् स्वयं। भगवान् कृष्ण को कभी हम

माखन और रोटी के लिये 'आरि' करते हुये पाते हैं तो कभी ग्वालों के साथ गाय चराते हुये। कभी वे वृन्दावन में गोपियों के साथ रासलीला करते हुये पाये जाते हैं तो कभी यमुना के तीर पर वंशी बजाते हुये। कभी वे गोपी-चीर-हरैया के रूप में दिखाई पड़ते हैं तो कभी नाग-नथैया के रूप में। कभी हम उन्हें दुर्योधन से सन्धि करने के लिये युधिष्ठिर का अग्रदूत बन कर जाते हुये देखते हैं तो कभी समर-भूमि में विमनस्क अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश देते हुये एक दार्शनिक के रूप में पाते हैं। जयद्रथ-वध के समय सूर्य को अपने सुदर्शन चक्र से छिपाते हुये उन्हें हम चतुर पुरुष के रूप में देखते हैं तो द्रोणाचार्य के वध के लिये पाण्डवों को उपाय बतलाते हुये कुटिल राजनीतिज्ञ के रूप में उन्हें पाते हैं। कभी वे कंस का वध करके दुष्टों के दमनकर्ता के रूप में दृष्टिगत होते हैं तो कभी कानी अंगुली पर गोवर्धन धारण करके लोक-रक्षा के रूप में। कभी वे अर्जुन के रथ पर बैठे चतुर सारथि के रूप में सामने आते हैं तो कभी सुदर्शनचक्र को धारण करने वाले महायोद्धा के वेष में। गोकुल के गाय-चरैया, वृन्दावन के रास-रचैया, बंसी-बजैया, चीर-हरैया एवं नाग-नथैया कन्हैया महाभारत में चतुरदूत, कुटिल राजनीतिज्ञ, गंभीर दार्शनिक और प्रचण्ड योद्धा के रूप चित्रित किये गये हैं। कहने का सारांश यही है कि श्रीकृष्ण के जीवन में हमें वह अलौकिकता दिखाई पड़ती है जो अन्य किसी में उपलब्ध नहीं है।

कृष्ण जन्माष्टमी का त्यौहार हमारा पुण्य पर्व है, यह हमारी राष्ट्रीय चेतना की जागृति का पुनीत दिवस है। यह समस्त हिन्दू जाति का राष्ट्रीय त्यौहार है।

महत्व

यह अधर्म का नाश कर इस पृथ्वी पर धर्म की स्थापना करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म की पवित्र तिथि है। यह हमारी धीमी धमनियों में रक्त का संचार करने वाला तथा हमारे बैठे हुये दिलों में जोश फूँकने वाला महामन्त्र है। कृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था में अपनी विविध लीलाओं के द्वारा लोकरंजन किया, युवावस्था में कंस आदि अत्याचारी राजाओं का वध कर लोक-रक्षण किया तथा प्रौढ़ावस्था में महाभारत में अत्याचारी कौरवों को पराजित कराकर देश में धर्म-संस्थापन का कार्य किया। इस

प्रकार उनका सारा जीवन परोपकार, प्रजारंजन, प्रजा-रक्षण और धर्म संस्थापन में ही व्यतीत हुआ। यही नहीं, उन्होंने अर्जुन से यह प्रतिज्ञा भी की थी कि :—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

"आज दुःख दावानल से दग्ध भारतभूमि घनश्याम की अमृत-वर्षा की बाट जोहती है। दुःशासन-निपीड़ित प्रजा-द्रौपदी रक्षा के लिये कातर स्वर में पुकारती है। धर्म अपनी दुर्गति पर सर धुनता हुआ 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति' की याद दिलाकर प्रतिज्ञा-भंग की 'नालिश' कर रहा है। जाति-जननी अत्याचारी कंस के कष्ट-कारागार में पड़ी दिन काट रही है।" ऐसी विषम परिस्थिति में कृष्ण के जन्म-तिथि को मनाकर उन्हें पुनः अवतार धारण करने के लिये प्रार्थना करने की कितनी आवश्यकता है। यह बतलाने की जरूरत नहीं है। इस त्यौहार को न केवल धार्मिक दृष्टि से बल्कि नैतिक तथा राष्ट्रीय दृष्टि से भी मनाने की आवश्यकता है। जब कि देश में इतनी अकर्मण्यता छाई हुई है तब तो 'कर्मयोग' के उपदेष्टा श्रीकृष्ण के उपदेश को ध्यान में रखते हुये उनकी जन्मतिथि को मनाना हमारा धर्म ही नहीं परमकर्तव्य भी है।

भाद्र]　　　　　　　　**१७. गणेश-चतुर्थी**　　　　　　　　[शुक्ल

भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की चौथ को गणेश-चतुर्थी का व्रत किया जाता है क्योंकि इसी दिन गणेशजी का जन्म हुआ था। गणेशजी को गणपति भी कहते हैं अतः गणपति-चतुर्थी के नाम से भी यह व्रत प्रसिद्ध है। यह गणपति-महोत्सव के नाम से भी पुकारा जाता है। गणेशजी सब देवता में अधिक प्रसिद्ध और लोक-प्रिय देवता हैं। हम लोगों का कोई भी माङ्गलिक कार्य क्यों न हो, गणेश जी सर्वत्र विराजमान रहते हैं। चाहे विवाह हो या किसी बालक का

मुण्डन अथवा सत्यनारायण की कथा भगवान् गणेश की पूजा सबसे पहले की जाती है। अधिक तो क्या, गणेश की लोक-प्रियता का पता केवल इसी से लग सकता है कि यदि हम लोग कोई पत्र भी लिखने बैठते हैं तो गणेश जी के स्मारक रूप में 'श्रीगणेशाय नमः' अवश्य ही लिखते हैं। बनिया लोग अपने बही, खाते पर, भक्त लोग घर के दरवाजे के ऊपर तथा पुजारी मन्दिरों में 'श्रीगणेशाय नमः' नियम पूर्वक अंकित करते हैं। अनेक घरों के प्रधान द्वार के ऊपर गणेश जी अपने वाहन चूहे के साथ विराजमान दिखाई देते हैं। कहने का सारांश यह है कि गणेश जी हमारे सर्व-प्रिय देवता हैं।

कथा

एक बार शंकर जी पार्वती के साथ कैलाश छोड़ कर नर्मदा के किनारे गये। वहाँ नर्मदा के अति रमणीय प्रदेश को देखकर पार्वती ने शिव से कहा कि आज मेरी इच्छा आपसे पासे खेलने की हो रही है। शंकर ने कहा - प्रिये! पाशा तो मैं अवश्य खेलूँगा परन्तु हम लोगों के जय तथा पराजय का निर्णय करने वाला भी तो कोई होना चाहिये। तब पार्वती ने पास ही में पड़े हुए 'एरका' नामक घास को उठाकर उसकी बालक की आकृति बनाया और जीवन-प्रदान किया तथा उससे कहा कि बेटा! हम और शिवजी पाशा का खेल खेल रहे हैं। तुम हम दोनों के जय-पराजय के साक्षी बनो। शिव और पार्वती में पाशा होने लगा और शंकर बड़ी मस्ती से खेलने लगे। पाशे में शंकर तीन बार पराजित हुये और पार्वती तीनों बार विजयी रहीं। परन्तु जब उस बालक से पूछा गया तब उसने शिव की जीत और पार्वती का हार जाना बतलाया। उस बालक के इस असत्य भाषण तथा कुटिल व्यवहार से क्रुद्ध होकर माता ने शाप दिया—'तूने सत्य के कहने में प्रमाद किया है। अतः तू एक पाँव से लँगड़ा होगा और सदैव इस कीच में पड़ा रह कर दुःख पाता रहेगा।' बालक ने माता के इस शाप को सुनकर कहा कि माता! मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया है बल्कि बालक होने के कारण प्रमाद-वश ऐसा हो गया है। अतः क्षमा कीजिये। तब पार्वती ने दया करके उससे कहा कि बेटा! जब नाग कन्यकायें इस नदी के तट पर गणेश के पूजन को आयेंगी तब तुम उनके उपदेश से गणेश-व्रत करना। तभी तुम मुझको प्राप्त कर सकोगे।

कुछ दिन बीत जाने पर नाग कन्यायें गणेश की पूजा के लिये आईं। उन्होंने गणेश-व्रत किया और उस बालक को गणेश की पूजा की विधि बतलायी। नाग कन्याओं के चले जाने पर इस बालक ने २१ दिन तक गणेश-व्रत बड़ी भक्ति से किया। अन्त में गणेश जी ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। तब बालक ने यह वर माँगा कि मेरे पाँव में शक्ति आ जाय जिससे में कैलाश चला जाऊँ और वहाँ जाने पर मेरे माता, पिता प्रसन्न हो जायँ। गणेश जी 'ऐसा ही हो' कह कर अन्तर्धान होगये। बालक शीघ्र ही कैलाश पहुँच कर शिवजी के चरणों पर जा गिरा। महादेव जी ने उससे पूछा कि तुम ने ऐसा कौन सा उपाय किया जिससे यहाँ पहुँच गये। इस प्रकार का कोई व्रत हो तो मुझे भी बतलावो जिसे करके मैं भी पार्वती को प्राप्त कर सकूँ। क्योंकि पार्वती उस दिन से क्रुद्ध होकर चली गयीं, तब से आज तक मेरे पास नहीं आई तब बालक ने गणेश-व्रत करने की कथा कह सुनायी। उस बालक की बताई हुई विधि से शिव जी ने २१ दिन तक गणेश का व्रत किया। जिससे पार्वती के अन्तःकरण में शिव से मिलने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई तथा वे शीघ्र ही शिवजी के पास जा पहुँची।

पार्वती ने शिव जी से पूछा कि आपने कौन सा ऐसा उपाय किया जिससे आपसे मिलने के लिये मेरे अन्तःकरण में इच्छा उत्पन्न होगई। तब शिव जी ने गणेश-व्रत बतलाया। अब पार्वती ने अपने पुत्र कार्तिकेय से मिलने के लिये यह व्रत करना प्रारम्भ किया। उन्होंने २१ दिन तक प्रति दिन २१ दूर्वा, २१ पुष्प और २१ लड्डुओं से गणेश पूजन किया तब इक्कीसवें दिन कार्तिकेय आप ही पार्वती से आ मिले। कार्तिकेय ने अपनी माता के मुख से इस गणेश-व्रत के महत्त्व को सुनकर इसे स्वयं करना प्रारम्भ किया और कुछ ही दिनों उन्होंने सेनानियों की प्रमुखता को प्राप्त कर लिया। यही व्रत कार्तिकेय ने विश्वामित्र को भी बतलाया और उन्होंने भी इस व्रत को करके इसी जीवन में 'महर्षि' पद को प्राप्त किया। इस प्रकार से गणेश जी का यह व्रत सकल कामनाओं को देने वाला है।

गणेश-चतुर्थी के दिन प्रातः काल स्नानादि से निवृत्त होकर के पूजन करने

के समय सोने, ताम्बे, मिट्टी अथवा गाय के गोबर की गणेश की प्रतिमा बनानी चाहिये। फिर नये कलश में जल भर कर, उसके ऊपर नया वस्त्र रख कर उस पर गणेश जी की प्रतिमा स्थापित करे। इसके बाद षोड़शोपचार से उनका पूजन कर नीचे लिखे श्लोक से उनका ध्यान करे।

पूजा विधि

लम्बोदरं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं रक्तवर्णकम्।
नानारत्नैः सुवेशाढ्यं प्रसन्नास्यं विचिन्तयेत् ॥

इसके बाद आवाहन, आसन, आचमन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, वस्त्र, पुष्प और गन्ध आदि से पूजन करके पुनः विभिन्न अङ्गों की पूजा करनी चाहिये। धूप, दीप, नैवैद्य, आचमन, ताम्बूल और दक्षिणा के पश्चात् आरती करे और प्रणाम करे। इस गणेश की पूजा में २१ लड्डू रखना चाहिये। उनमें से पाँच तो गणेश की मूर्ति के आगे रखखे और शेष ब्राह्मणों को बाट देवे। रात में चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा की यथाविधि पूजा करके अर्घ्य देना चाहिये। बाद में आचार्य को दक्षिणा देकर गणेश जी का विसर्जन करना चाहिये।

गणेश जी हमारे बहुत ही प्राचीन देवता हैं। जिस प्रकार हम लोग किसी शुभ कार्य के पहिले गणेश जी की पूजा करते हैं उसी प्रकार-वैदिक आर्य भी किया करते थे। वेदों में इनका ब्रह्मणस्पति के नाम से वर्णन आता है। वहाँ वे गणों के पति (नेता) के रूप में दिखलाये गये है। यथा—

प्राचीनता

गणानां त्वां गणपतिं हवामहे।
प्रियाणां त्वां प्रियपतिं हवामहे।
निधीनां त्वां निधिपतिं हवामहे।

उपनिषदों में यह 'दन्तिः' के रूप में स्मरण किये गये हैं। और इनको टेढ़ी सूढ—वक्रतुण्ड—वाला कहा गया है। नारायणोपनिषद् की यह प्रार्थना देखिये :—

तत्पुरुषाय विद्महे, महादेवाय धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।
तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्तीः प्रचोदयात् ॥

ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी पता चलता है कि गणेश की पूजा चिरकाल से चली आ रही है। मर्हेंजोदड़ों के भग्नावशेषों से पता चलता है कि आज से लगभग ५००० वर्ष पहिले भी गणेश की पूजा होती थी। गुप्तकालीन मूर्तिकला में भी गणेश जी अपने वाहन चूहे के साथ विद्यमान दिखाई पड़ते हैं।

महत्त्व

जैसा कि गणेश के नाम से पता चलता है, यह देवता गण के ईश—स्वामी हैं अर्थात् यह सब देवताओं में अग्रणी या नेता है। अतः इनकी पूजा सर्वप्रथम होनी स्वाभाविक ही है। नेतृत्व के पुजारी लोकमान्य तिलक ने संभवतः इसीलिये 'गणपति-महोत्सव' को एक राष्ट्रीय पर्व का रूप प्रदान किया था। महाराष्ट्र में आज भी 'गणपति' की पूजा बड़े ठाट बाट से की जाती है। इस समय पर वहाँ बड़ी बड़ी सभायें होतीं हैं। प्रसिद्ध विद्वान् व्याख्यान देते हैं तथा यह क्रम कई दिनों तक चलता रहता है। गणेश जी बुद्धि के देवता हैं और वह भी विवेचनात्मक बुद्धि के। आज देश में घोर अन्धविश्वास छाया हुआ है, पुरानी रूढ़ियाँ तथा कुत्सित अन्धम्परा अपना घर बनाये बैठी है। अतः विवेचनात्मक बुद्धि तथा विचारशीलता का सहारा लेकर यदि इन अन्ध परम्पराओं को दूर करना है तो गणेश का व्रत करना अत्यन्त ही आवश्यक है।

भाद्र] १८. ऋषि-पंचमी [शुक्ल

नामकरण

भाद्र शुक्ला पंचमी को ऋषि-पंचमी कहते हैं। इस व्रत का नाम ऋषि-पंचमी क्यों पड़ा यह ठीक ठीक बतलाना कठिन है। क्योंकि ऋषि-पंचमी की जो कथा है—जो आगे लिखी जायेगी—उससे इसके नामकरण के कारण पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। इस दिन बिना जोता हुआ अन्न खाने का विधान है। जंगल में सुलभ सम्भवतः ऐसे ही अन्न को खाकर ऋषि लोग प्रधानतया इस व्रत को करते थे। शायद इसीलिये इसका

नाम ऋषि-पञ्चमी पड़ गया हो। इस व्रत को स्त्रियाँ भी करती हैं और पुरुष भी। फिर भी इन दोनों में पुरुषों की ही प्रधानता रहती है।

व्रतविधि

इस दिन व्रत करने वाली स्त्री या पुरुष को चाहिये कि स्वच्छ जलवाली किसी नदी के किनारे जाकर १०८ या ८ अपामार्ग (लोक में चिचिरी के नाम से प्रसिद्ध) की दातुन से मुँह धोवे और मिट्टी सारे शरीर में मलकर स्नान करे। इसके बाद पञ्चगव्य पान करे। स्नान करने के पश्चात् नित्य कर्म करे बाद में घर आकर गोबर लेकर पूजा के स्थान को चौंकोर लीपना चाहिये। फिर उसी स्थान पर अनेक रङ्गों से सर्वतोभद्र मण्डल बना कर मिट्टी अथवा ताँबे का घड़ा उस पर रक्खे और उसे कपड़े से ढक दे। घड़े के ऊपर ताँबा अथवा मिट्टी के वर्तन में जौ भरके उसमें पंचरत्न, फूल, गन्ध और अक्षत रखकर वस्त्र से ढँक दे। उसी स्थान पर अष्टदल कमल बनाकर सप्त ऋषियों की पूजा करे और षोड़शोपचार से पूजन करने के पश्चात् ब्राह्मणों को दान करे। बाद में स्वयं हल से न जुते हुये अन्न को खाकर व्रत समाप्त करे। बहुत से लोग दही और साठी का चावल इस दिन खाते हैं और नमक का प्रयोग नहीं करते। दिन में केवल एक भुक्त रहते हैं और रात्रि में संयम-पूर्वक शयन करते हैं।

सतजुग में प्रसेनजित नामक राजा राज्य करता था। उसके राज्य में वेद का प्रकाण्ड पण्डित सुमित्र नामक एक ब्राह्मण खेती करके अपनी जीविका चलाता था।

कथा

उसकी स्त्री का नाम जयश्री था। वह बड़ी सती, साध्वी थी और अपने पति को खेती के काम में सदा सहायता देती थी। एक समय वह स्त्री रजस्वला होकर अज्ञात अवस्था में अपने गृह का कार्य करती रही और ब्राह्मणों को भी स्पर्श करती थी। दैव योग से पति-पत्नी एक ही साथ मरे। रजस्वला अवस्था में स्पर्शास्पर्श का विचार न रखने कारण दूसरे जन्म में स्त्री ने कुत्ती का जन्म धारण किया और पति ने अपवित्र अवस्था में स्त्री-समागम करने के कारण दूसरे जन्म में बैल की योनि को प्राप्त किया।

ब्राह्मण के पुत्र का नाम सुमति था जो अपने पिता ही के समान वेदों का ज्ञाता था। संयोग से उसके मातापिता दूसरे जन्म में कुत्ती और बैल का जन्म

धारण कर उसी के घर में रहते थे। एक दिन सुयोग्य पुत्र ने अपने माता और पिता का श्राद्ध किया। सुमति की स्त्री ने ब्राह्मणों को भोजन कराने के लिये जो खीर तैयार किया था इसमें अकस्मात् एक सर्प विष उगल गया। कुत्ती ने यह दृश्य देखा था। उसने सोचा कि यदि ब्राह्मण यह खीर खायेगें तो वे खाते ही मर जायेगें। अतः उसने सुमति के सामने ही उस खीर को जाकर छू दिया। यह देख कर सुमति बड़ी क्रुद्ध हुई और उसने जलती हुई लकड़ी से उस कुत्ती को मारा। बाद में उसने सारे खीर को गिरा कर जमीन में गाड़ दिया और कुत्ती को उस दिन कुछ भी खाना नहीं दिया। अतः कुत्ती भूखी ही रही।

रात्रि में उसी घर में बँधे हुये बैल से कुत्ती ने दिन वाली घटना को कह सुनाया तथा अपने ऊपर पड़ी हुई प्रचण्ड मार की भी बात बताया। फिर बाद में वह बोली—क्या करूँ ? अत्यधिक भूख के मारे मेरी कमर टूटी जाती है। बैल ने कहा—आज पञ्चमी तिथि होते हुये भी मुझे भी दिन भर एकादशी ही करनी पड़ी है। मुझको दिन भर आज सुमति ने हल में जोता था और मेरा मुँह में जाब बाँध दिया था जिससे मैं कोई वस्तु खा न सकूँ और तृण भी न चर सकूँ। आज हम दोनों के भूखे रहने से सुमति का श्राद्ध करना व्यर्थ ही हुआ।

सुमति पशुओं की बोली को अच्छी तरह से समझता था। उसने कुत्ती और बैल के वार्तालाप को सुना और उसे समझ कर बड़े आश्चर्य में पड़ गया। वह दौड़े हुये एक ऋषि के आश्रम में गया और अपने पिता के पशु योनि में पैदा होने का कारण पूछा। ऋषि ने ध्यान किया और अपने योग-बल से उन दोनों की पूर्वजन्म की कथा को जान लिया तथा सारा वृत्तान्त सुमति से कह सुनाया। सुमति ने दुःखी होकर ऋषि से पूछा कि महात्मन्! ऐसा कोई उपाय बतलाये जिससे मेरी माता और पिता इस योनि से मुक्ति पा जाँय। तब ऋषि ने उत्तर दिया कि तुम दोनों स्त्री और पुरुष ऋषि-पञ्चमी का व्रत करो और विधि पूर्वक उद्यापन करके इस दिन बैल के जोतने से उत्पन्न कोई भी अन्न न खाओ। तभी तुम्हारे माता-पिता की मुक्ति हो सकती है। पितृ भक्त सुमति ने ऋषि के कथनानुसार ही व्रत किया। अनन्तर इस व्रत के कारण उसके माता और पिता पशु-योनि से मुक्ति को प्राप्त किया।

उपर्युक्त कथा से पता चलता है कि यह व्रत शरीर के द्वारा किये गये स्पर्शास्पर्श तथा अन्य पापों के प्रायश्चित्त के रूप में किया जाता है। साल भर तक शरीर से हम लोग जो पाप करते हैं उसका प्रायश्चित्त इस व्रत के करने से हो जाता है और मनुष्य फिर शुद्ध हो जाता है। अतः शरीर की शुद्धता और पवित्रता को बनाये रखने के लिये यह व्रत आवश्यक है। इस व्रत से स्त्रियों को यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि रजस्वला की दशा में स्पर्शास्पर्श का बहुत विचार रक्खें तथा किसी भी वस्तु को न छुयें। पुरुषों को चाहिये कि इन दिनों में स्त्री-समागम न करें और संयम के साथ रहें। तभी ऋषि-पञ्चमी व्रत करने का पुण्य मिल सकता है अन्यथा नहीं।

भाद्र] ## १९. वामन-जयन्ती [शुक्ल

भादो की शुक्लपक्ष की द्वादशी का नाम वामन-द्वादशी है। इसी दिन भगवान् वामन का जन्म हुआ था। इसलिये वामन भगवान् के जन्म के स्मारक रूप में यह उत्सव मनाया जाता है। वामन ने राजा बलि को छल करके देवताओं का बड़ा भारी उपकार किया था। दैत्यों के कारण देवता लोग जो कष्ट पा रहे थे उससे उनका निवारण किया था। वामन के इसी पुण्य कार्य के उपलक्ष में इनकी जन्म-तिथि मनायी जाती है। इनके व्रत करने की विधि हेमाद्रि तथा भविष्योत्तरपुराण में विस्तार पूर्वक लिखी है।

वामन-द्वादशी को व्रत करने वाले व्रती को चाहिये कि एकादशी को उपवास करके रात्रि को भगवान् का पूजन करे और चाँदी या सोना के पात्र में स्वर्णमयी वामनावतार की मूर्ति स्थापित करे। उस मूर्ति में शिखा, सूत्र, कमण्डलु और यज्ञोपवीत का चिह्न अवश्य हो क्योंकि वामन भगवान् का रूप ब्रह्मचारी का रूप है। एक पात्र में सुन्दर फलों को रखना चाहिये। यदि फल न मिल सके तो जौ को ही रख सकते हैं। एक मृग-

व्रतविधि

छाला में तिलों को भी रक्खें। बाद में पुष्प, धूप और नैवेद्य आदि से पूजन करे और इस मन्त्र से ध्यान करे :—

ब्रह्माण्डमुदरे यस्य महद्भूतैरधिष्ठितम्।
मायावी वामनः श्रीशो समायातु जगत्पतिः॥

इसके बाद द्वादशी को इस व्रत का उपोषण करके उद्यापन करे। सत्ययुग की यह कथा है। एक बार समस्त देवता लोग एकत्रित होकर विष्णु भगवान् के पास गये और उनसे यह निवेदन किया कि भगवन्! राजा बलि ने स्वर्गलोक को जीत लिया है। अतः हम देवता स्वर्गभ्रष्ट होकर इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं। विष्णु ने उत्तर दिया कि मैं आप लोगों के कष्टों को समझता हूँ। परन्तु राजा बलि ने अपनी तपस्या से मुझे अत्यन्त प्रसन्न कर लिया है। उसके गुण का वर्णन करना कठिन है। उसने अपने तप से स्वर्गलोक को जीता है, बल से नहीं। परन्तु अब उसकी तपस्या में कमी हो गयी है। अतः मैं स्वयं भी यही चाहता हूँ कि स्वर्ग में बलि का राज्य न रहे। अतः आप लोग कश्यप ऋषि की स्त्री अदिति के पास जाकर प्रार्थना करें कि वह मेरी भक्ति करे। यदि वह मेरी भक्ति करेगी तो मैं उसके यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न होकर पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करूँगा और बलि को पाताल भेज कर पुनः स्वर्ग में देवताओं का राज्य स्थापित करूँगा।

कथा

देवता लोग प्रसन्न चित्त होकर अदिति के पास गये और उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अदिति ने भगवान् विष्णु की भक्ति की और फलस्वरूप भगवान् वामन के रूप में प्रकट हुये। इस पर देवों को प्रसन्नता हुयी। कश्यप ने शास्त्रानुसार उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया। एक दिन जब राजा बलि यज्ञ कर रहे थे तब वामन ने मेखला, दण्ड, जटा, यज्ञोपवीत और कमण्डलु धारण कर और ब्रह्मचारी बटु का रूप धारण कर बलि को छलने के लिये वहाँ प्रस्थान किया। राजा बलि दिव्यरूपधारी ब्रह्मचारी को यज्ञ-मण्डप में आते हुये देखकर बड़े प्रसन्न हुये और उनके आने पर बोले कि महात्मन्! आपने बड़ा कष्ट करके यहाँ पदार्पण किया। मैं कृतार्थ हो गया। आपकी जो इच्छा हो उसे माँगिये। मैं वही देने को तैयार हूँ। वामन ने बड़ी गम्भीरता से कहा—हम विद्यार्थियों को

अधिक क्या चाहिये ? पठन-पाठन करने के लिये केवल तीन पाद पृथ्वी की आवश्यकता है। यदि तुम से हो सके तो यह दे दो। यह सुनते ही राजा बलि ने तुरन्त ही तीन पाद पृथ्वी संकल्प करके वामन को दे दी। यद्यपि राजा बलि के गुरु शुक्राचार्य ऐसा करने से मना किया परन्तु उन्होंने गुरु की आज्ञा न मानी और तीन पद पृथ्वी नापने की आज्ञा दे दी। जब पृथ्वी नापने का समय आया तो वामन ने अपना विराट रूप धारण किया और दो ही पग में सारे विश्व को नाँप लिया और तीसरे पद के लिये राजा बलि से स्थान माँगा। बलि ने लाचार होकर अपना शरीर नापने को कहा। परन्तु तीसरे पद के लिये बलि का शरीर पूरा न पड़ने के कारण वामन ने उन्हें बाँध लिया और स्वर्गलोक से हटाकर उन्हें पाताल भेज दिया। इस प्रकार से पुनः स्वर्गलोक में देवताओं का राज्य हो गया और वे लोग सुखपूर्वक रहने लगे।

भगवान् वामन ने दुष्ट दैत्यों के राजा का दमन कर स्वर्ग में पुनः देवताओं का राज्य स्थापित कर शान्ति उत्पन्न की थी। अतः उनके इस महान् कार्य को स्मरण करने के लिये वामन-जयन्ती मनानी चाहिये।

भाद्र] २०. अनन्त चतुर्दशी [शुक्ल

भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी अनन्त चतुर्दशी के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन अनन्त भगवान् की पूजा होती है। इसलिये इसका नामकरण उन्हीं के नाम पर हो गया है। इस व्रत में उदय-व्यापिनी तिथि लेनी चाहिये[1]। यदि इसमें पूर्णिमा का सहयोग हो जाय तो उसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है[2]। हेमाद्रिकार ने भी यह

कालनिर्णय

---

१ उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्यानन्तव्रते तिथिः।

२ तथा भाद्रपदास्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम।
पौर्णमास्याः समायोगे, व्रतं चानन्तकं चरेत्॥

लिखा है कि "भाद्रपद शुक्ला में जो अनन्त चतुर्दशी होती है, वह यदि एक घटिका भी हो तो भी उदय व्यापिनी ही ग्रहण करनी चाहिये[1] ।" अतः इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि इस दिन उदया तिथि ही ग्रहण करनी चाहिये ।

अनन्त-चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल किसी नदी में स्नान करके, नित्यकर्म को समाप्त कर भगवान् अनन्त को हृदय में धारण करना चाहिये । बाद में गोबर का

पूजा का प्रकार

चौका लगाकर उस स्थान पर कलश रखकर नये वस्त्रों से उसे ढँक देना चाहिये । कलश के पास ही एक वेदी बना कर अष्टदल कमल लिख कर, मन्त्र द्वारा संकल्प करे । इसके उपरान्त कलश में वरुण देवता का आवाहन करे । बाद में आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पंचामृत स्नान, वस्त्र, चन्दन, धूप, दीप और पुष्प से भगवान् अनन्त की पूजा करे । फिर सूत में मन्त्रों द्वारा १४ गाँठों को लगावे । विष्णु के १०८ नामों का ध्यान करके किये गये पापों के लिये क्षमा की प्रार्थना करता हुआ नीचे लिखे श्लोक से उस डोरा को अपनी दाहिनी भुजा में बाँधे—

अनन्त संसारमहासमुद्रे; मग्नं समभ्युद्धर वासुदेव ।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व; ह्यनन्तसूत्राय नमो नमस्ते ॥

दुर्योधन के द्वारा जुवे में पराजित किये जाने पर अन्य भाइयों के साथ युधिष्ठिर को बारह वर्ष के बनवास का कष्ट भोगना पड़ा था । जब वे वन के कष्टों को

कथा

भुगत ही रहे थे उसी समय संयोग से कृष्ण जी वहाँ आ पहुँचे । युधिष्ठिर ने अपने कष्टों का उनसे निवेदन किया और कहा कि भगवन् ऐसा कोई उपाय बतलाइये जिससे नष्ट राज्य फिर से प्राप्त हो जाय । भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि तुम अनन्त का व्रत करो इससे तुम्हारी कामना की सिद्धी होगी । इसके साथ उन्होंने यह प्राचीन कथा भी युधिष्ठिर से कह सुनायी ।

---

१ शुक्ला भाद्रपदस्यापि, अनन्ताख्या चतुर्दशी ।
उदयव्यापिनी ग्राह्या घटिकैकापि या भवेत् ॥ —हेमाद्रि ।

सतयुग में सुमन्तु नामक एक वशिष्ठ गोत्री ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम दीक्षा था जो भृगु की कन्या थी। कुछ दिनों के बाद इस ब्राह्मण के घर शीला नामक एक लड़की पैदा हुयी जो रूप और गुण में सचमुच सुशीला थी। कुछ दिनों के बाद ब्राह्मण की स्त्री ज्वर के रोग में मर गयी। अतः उसने अपने अग्निहोत्र कर्म की रक्षा के लिये दुःशीला नामक स्त्री से अपना दूसरा विवाह किया। यह बड़ी कर्कशा तथा अपने नाम के अनुरूप ही दुष्ट आचरण वाली थी। इधर ब्राह्मण की पुत्री भी विवाह योग्य हो चली थी। उसी समय विवाह करने की इच्छा से कौडिन्य ऋषि वहाँ आ पहुँचे। सुमन्तु ने उन्हीं के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। कौडिन्य शीला को रथ में बिठला कर अपने घर ले चले। रास्ते में सन्ध्या हो चली और एक नदी भी आ मिली। रथ से उतर कर कौडिन्य सन्ध्यावन्दन के लिये चले गये। शीला ने देखा कि कुछ स्त्रियाँ नदी के किनारे किसी देवता की पूजा कर रही हैं। वह उनके पास गयी और उनसे व्रत का हाल पूछने लगी। स्त्रियों ने बतलाया कि यह अनन्त भगवान् का व्रत कहलाता है और इसके करने से सब कामनाओं की पूर्ति होती है। दुःख दारिद्र भाग जाता है और घर में धनधान्य की वृद्धि होती है। अन्त में उन्होंने अनन्त का सूत उस शीला की बाँह में बाँध दिया।

शीला अपनी ससुराल आयी और अनन्तदेव का व्रत नियमपूर्वक करने लगी। विवाह के पूर्व कौडिन्य बड़ा ही गरीब था परन्तु शीला के सदाचरण तथा अनन्त की उपासना से उसके घर में धन धान्य की प्रचुर वृद्धि हो गयी। एक दिन कौडिन्य ने शीला की बाँह में बँधा एक सूत देखा जो पुराना होने के कारण काला पड़ गया था। कौडिन्य ने समझा कि शायद मुझे टोना करने के लिये इसने यह काला सूत बाँधा है। स्त्री के बहुत समझाने पर भी कि यह अनन्त का सूत है वह न माना और उसे तोड़ कर आग में डाल दिया। अनन्त देव के इस घोर अपमान के कारण ब्राह्मण की दशा अत्यन्त शोचनीय होने लगी और वह पुनः दरिद्री हो गया। एक दिन कौडिन्य ने शीला से इस दुःख का कारण पूछा और उसने इसका कारण अनन्त का अपमान बतलाया। यह सुनकर वह ब्राह्मण अत्यन्त दुःखित हुआ और अनन्त की खोज में बन में चला

गया। वहाँ जाकर उसने एक आम को देखा। जिसमें बहुत सुन्दर फल लगे हुये थे परन्तु उसको न तो कोई मनुष्य खाता था और न पक्षी ही भोजन करता था। ब्राह्मण ने उससे अनन्त का पता पूछा परन्तु उसने नकारात्मक उत्तर दिया। बाद में उसने गाय को देखा जिसके थन में दूध का अत्यन्त अभाव था। पश्चात् उसने दो नदियों को देखा जिनका जल एक दूसरे में आता-जाता था। उनसे भी पूछने पर अनन्त का कुछ पता न चला। फिर एक हाथी और गधे को उसने देखा परन्तु किसी से भी अनन्त का पता उसे नहीं चला। अन्त में, थक कर वह ब्राह्मण जमीन पर बेहोश होकर गिर पड़ा।

इस प्रकार ब्राह्मण को दुःखी देखकर अनन्त भगवान् वहाँ पर प्रकट हुये और उस ब्राह्मण से कहा कि यह जो कष्ट तुम उठा रहे हो वह मेरे व्रत के अपमान करने का फल है। यदि तुम घर पर जाकर १४ वर्ष तक मेरे व्रत को करोगे तो पुनः पूर्ववत् धनधान्य से सम्पन्न हो जावोगे। कौडिन्य के पूछने पर अनन्त ने यह भी बतलाया कि वह आम पूर्वजन्म में विद्या-विशारद पण्डित था परन्तु किसी को कुछ पढ़ाता न था। इससे उसकी विद्या का कुछ भी उपयोग न होने से वह वृक्ष हो गया। वे दो नदियाँ पूर्वजन्म में दो बहन थीं जो आपस में ही दान लेती-देती थी। इसी से वे नदी हो गईं और उनका पानी एक दूसरे में आता-जाता रहता है इत्यादि।

ब्राह्मण ने घर आकर अनन्त के व्रत को किया और उनकी कृपा से पुनः वह पूर्ववत् धनधान्य से सम्पन्न होगया। आजकल अनन्त चतुर्दशी के दिन दोपहर तक उपवास किया जाता है। बाद में अनन्त देव की कथा स्थान स्थान पर ब्राह्मण लोग कहते हैं जिसे सुनने के लिये सब लोग जाते हैं। जो नयी बहुयें कथास्थान पर नहीं जा सकतीं वे अपने अंग का कोई गहना ही कथा सुनने के लिये भेज देती है। पण्डित जी उपर्युक्त कथा को संस्कृत में कह भावार्थ भी करते हैं। कथा-समाप्ति पर थाली में पानी रख कर अनन्त को ढूढ़ते हैं। बाद में प्रसाद बाँटा जाता है तथा सब लोग नये सूत को जिसमें १४ गाँठ पड़ी रहती है अनन्त देव की प्रतिकृति समझ कर दाहिने

वर्तमान रूप

हाथ में बाँधते हैं। फिर घर जाकर पुआ, पूड़ी और कचौरी खाते हैं। कुछ लोग इस दिन नमक नहीं खाते अतः वे मालपूआ पूड़ी और खीर खाकर व्रत की रक्षा करते हैं। इस व्रत को एक भुक्त रहना आवश्यक समझा जाता है।

महत्व

अनन्त का वास्तविक अर्थ है वह वस्तु जिसका अन्त न हो (न + अन्त = अनन्त) अर्थात् ईश्वर। अतः अनन्तदेव की पूजा उस निराकार भगवान् की पूजा है जो सर्वव्यापी है और जिसका कहीं न आदि है न अन्त ही है। परन्तु बहुत से लोग अनन्त को कोई विशिष्ट देवता समझते हैं। यह उनकी नितान्त भूल है। इसीलिये कौडिन्य वन-वन घूमता रहा परन्तु अनन्तदेव का कहीं पता नहीं चला। पता चलता भी तो कैसे ? वह तो उसी के शरीर में विद्यमान थे। इसलिये हम लोगों को चाहिये कि इस दिन उस परमब्रह्म परमेश्वर की हृदय में आराधना करें जिसका कभी अन्त नहीं है तथा इस दिन उपवास रह कर अपनी आत्मा को शुद्ध बनाकर पवित्र भावों को अपने हृदय में स्थान दें।

आश्विन] **२१. महालया** [कृष्ण

२१. महालया

आश्विन मास की कृष्ण पक्ष की अमावस्या को 'महालया' कहते हैं। आश्विन मास का कृष्ण पक्ष 'पितृपक्ष' के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि इन दिनों में मरे हुये पितरों के लिये तिलाञ्जलि देकर तथा उनकी मृत्यु-तिथि के दिन ब्राह्मण-भोजन करा कर पितरों की तृप्ति की जाती है। इस 'पितृपक्ष' को अपढ़ आदमी 'पितरपख' कहते हैं और देहातों में यह पक्ष इसी नाम से प्रसिद्ध है। यू० पी० के पश्चिमी जिलों में यह 'कनागत' के नाम से बोधित किया जाता है जो कन्यागत (कन्या + आगत) शब्द का अपभ्रंश है। इसी रूप में यह शब्द मार्कण्डेय

पुराण में मिलता है[1]। इसी पितृपक्ष या कनागत की अन्तिम तिथि। (आमवस्या) को महालया[2] कहते हैं।

इन पन्द्रह दिनों तक प्रत्येक मातृ-पितृ विहीन गृहस्थ को चाहिये कि अपने माता-पिता तथा अन्य पितरों को तिलाञ्जलि दें तथा जिस तिथि को वे मरे हों उस तिथि को उनका श्राद्धकर ब्राह्मण भोजन करायें। स्मृतियों में लिखा है कि जो मनुष्य पितृ-पूजन अर्थात् श्राद्ध करता है वह आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग कीर्ति, पशु, सुख, धन और धान्य को प्राप्त करता है[3]। याज्ञवल्क्य स्मृति का वचन है कि श्राद्ध कर्म से प्रसन्न होकर पितर लोग मनुष्यों के लिये आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य देते हैं[4]।

श्राद्ध का फल

आश्विन मास में पितरों को यह आशा लगी रहती है कि हमें पिण्डदान मिलेगा तथा पीने के लिये जल की प्राप्ति होगी। ऐसी दशा में पिण्डदान न मिलने पर उन्हें बड़ी निराशा होती है और वे शाप देकर चले जाते हैं। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में यमराज मृत पितरों को यमालय से छोड़ देते हैं। वे पितृगण अपनी सन्तानों से पिण्डदान की आशा से इस लोक में आ जाते हैं। जब सूर्य कन्या राशि में आता है, पितर तभी यहाँ आते हैं और आमावस्या के दिन तक घर के द्वार पर ठहर कर श्राद्ध न करने

---

१ कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च।
पार्वणेनैव विधिना तत्रश्राद्धं विधीयते॥

२ आयुः, पुत्रान्, यशः, स्वर्गं; कीर्तिं, पुष्टिं, बलं, श्रियम्।
पशून्, सौख्यं, धनं, धान्यं; प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

३ आयुः, प्रजां, धनं, विद्यां, स्वर्गं, मोक्षं, सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं; प्रीताः नृणां पितामहाः॥

४ नभसि ह्यपरः पक्षः, यत्र कन्यां व्रजेत् रविः।
स महालयसंज्ञः स्यात्, गजच्छायाह्वयस्तथा॥
पार्वणेनैव विधिना, तत्र श्राद्धं विधीयते॥

वाले लड़कों को शाप देकर यमलोक को चले जाते हैं। इसलिये पितरों की तुष्टि के लिये श्राद्ध अवश्य करना चाहिये[1]।

इस पक्ष में पितृ-मातृ विहीन सन्तान को चाहिये कि प्रातःकाल उठकर शौचादि से निवृत्त होकर किसी नदी के किनारे जाकर प्रथम तो स्नान करे। बाद में जव, तिल, अक्षत तथा कुश को अपने हाथ में लेकर वैदिक पण्डित के द्वारा बतलाये गये मन्त्रों से पितृलोगों को सूर्य के सामने खड़े होकर जलाञ्जलि दे। यदि स्वयं मन्त्रों का उच्चारण न कर सकें तो किसी पण्डित की सहायता लेनी चाहिये। वे पद्धति के अनुसार जैसा करने को कहें वैसा ही करे। यह तिलाञ्जलि देने का कार्य प्रत्येक दिन होना चाहिये। बाद में जिस दिन माता अथवा पिता के मरने की तिथि हो उस दिन वैदिक रीति से पिण्ड दान करे तथा अपनी शक्ति के अनुसार, दो, चार दस ब्राह्मणों को भोजन करा कर भूयसी दक्षिणा दे। पितृपक्ष के दिनों में बाल नहीं बनाना चाहिये, जूता नहीं पहनना चाहिये, तरोई की तरकारी नहीं खानी चाहिये तथा ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये। इन दिनों में तेल लगाना भी मना है। चूँकि यह पन्द्रह दिनों तक तिलाञ्जलि धार्मिक अनुष्ठान के रूप में की जाती है, अतः इन नियमों का पालन करना इन दिनों में अत्यन्त आवश्यक है।

शास्त्रीय स्वरूप

गया जी में पितृपक्ष के दिनों में श्राद्ध करने का बड़ा महत्त्व समझा जाता है।

---

१ आश्वयुज्यां तु कृष्णायां त्रयोदश्यां मघासु च।
प्रावृड्तौ यमप्रेतान् पितृंश्चाथ यमालयात् ॥
विसर्जयति भूर्लोकं कृत्वा शून्यं स्वकं पुरम्।
ते पुत्रादेः प्रकांक्षन्ति पायसं मधुसंयुतम् ॥
कन्यागते सवितरि पितरो यान्ति वै सुतान्।
अमावस्यादिने प्राप्ते गृहं द्वारं समाश्रिताः ॥
श्राद्धाभावे स्वभवनं शापं दत्वा व्रजन्ति ते।
अतो मूलैः फलैर्वापि, तथाप्युदकतर्पणैः।
पितृतुष्टिं प्रकुर्वीत, नैव श्राद्धं विवर्जयेत् ॥

अतः लाखों यात्री इन दिनों में गया जी जाते हैं और पितृ-श्राद्ध करते हैं। इन दिनों में गया में बड़ी भीड़ होती है जिसके लिये सरकार को विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है। महालया के दिन फल्गु नदी में स्नान कर तथा पितृ-श्राद्ध करके लाखों यात्री अपने पितरों को तृप्ति-प्रदान करते हैं। काशी में भी इसका बड़ा प्रचार है। पितृ-पक्ष के दिनों में वहाँ पर प्रत्येक घाट के ऊपर सैकड़ों आदमी गंगा में तिलाञ्जलि देते दिखाई पड़ते हैं।

महत्त्व

महालया हमारा परम पुनीत दिन है। यह हमें अपने पितरों को तिलाञ्जलि के साथ ही श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने का अवसर प्रदान करता है। यह हमें अपने उन माता, पिता की याद दिलाता है जिन्होंने हमें यह काञ्चन-काया प्रदान की और संसार में हमें कुछ करने के योग्य बनाया। इस त्यौहार से यह पता चलता है कि हम हिन्दू अपने जीवित माता-पिता का सत्कार तो करते ही हैं। उनके मर जाने पर भी हम उन्हें नहीं भूलते और जल तथा अन्न (पिण्ड) देकर हम उन्हें सदा सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करते हैं। अपने माता-पिता के हम कितने कृतज्ञ हैं इससे स्पष्ट पता चल जाता है। संसार में ऐसी कोई जाति नहीं है जो अपने मृत पितरों का इतना आदर करती हो जितना कि हम हिन्दू। जब औरंगजेब ने शाहजहाँ को आगरे के किले में बन्द कर कैद कर दिया था तब उसे केवल एक लोटा पानी दिन रात के बीच में पीने को दिया करता था। एक दिन संयोग से लोटे का पानी गिर गया। शाहजहाँ ने पुनः एक लोटा जल के लिये प्रार्थना की। इस पर औरंगजेब ने अधिक जल देने से उसे इन्कार कर दिया। तब प्यास से दुःखी शाहजहाँ ने यह कहा था कि:—"वे हिन्दू धन्य हैं जो अपने मरे हुए पितरों को भी पानी देते हैं। परन्तु तू कैसा पुत्र है जो अपने जीते बाप को भी पानी न देकर उसे प्यासा मार रहा है।"

हमारा विश्वास है तथा शास्त्रों में लिखा भी है कि तिलाञ्जलि तथा पिण्ड-दान देने से पितरों की आत्मा को शान्ति मिलती है। परन्तु यदि यह न भी होता हो तो क्या यह हम लोगों का परम कर्तव्य नहीं है कि उस माता-पिता—जिसने हमें यह शरीर प्रदान किया है—की पुण्य स्मृति में उनके नाम पर और कुछ

नहीं तो एक, दो गरीब ब्राह्मणों को ही भोजन करा दें ? किसी भी दृष्टि से विचार करने पर इसका करना हमें बहुत आवश्यक प्रतीत होता है ।

कुआर] **२२. नवरात्र** [शुक्ल

आश्विन शुक्ल प्रतिपत् से नवमी तक—ये नव दिन नवरात्र के नाम से से प्रसिद्ध हैं । नवरात्र साल में दो बार होते हैं—(१) चैत्र शुक्ल प्रतिपद से नवमी (२) आश्विन् शुक्ल प्रतिपत् से नवमी तक । पहिला वासन्ती नवरात्र के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि यह वसन्तऋतु में होता है और दूसरा शरद्ऋतु में होने के कारण शारदीय । अधिक प्रसिद्ध होने के कारण केवल नवरात्र कहने से इसी 'शारदीय नवरात्र' का बोध होता है । नवरात्र के ये नव दिन बड़े ही पवित्र माने जाते हैं और इन दिनों दुर्गा का पाठ और पूजन सर्वत्र बड़े नियमित रूप से होता है । हमारे यहाँ दुर्गा शक्ति की देवता हैं । इनका वाहन सिंह है तथा ये सदा अपने हाथ में तलवार लिये रहती हैं । इनके हजारो नाम हैं जिनमें एक नाम महिषा-सुर-मर्दिनी भी है । शायद ही कोई ऐसा स्थान हो जहाँ इन दिनों देवी की पूजा न की जाती हो ।

भगवती की पूजा कब प्रारम्भ करनी चाहिये और कब विसर्जन करना चाहिये यह भी एक विवादग्रस्त विषय है । इनकी पूजा का प्रारम्भ अमायुक्त प्रतिपदा में वर्जित है और द्वितीया युक्त प्रतिपदा में शुभ माना जाता है । यही बात मार्कण्डेय पुराण तथा देवी पुराण में भी लिखी हुई है । वहाँ पर भी पर-विद्धा के ही ग्रहण का विधान है । पूर्व-विद्धा नवरात्र व्रत को किसी भी प्रकार नहीं करना चाहिये ।

काल-निर्णय

**"पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत्प्रतिपदाश्विनी ।
नवरात्र व्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता ॥"**

दुर्गा की पूजा के निमित्त प्रतिपदा को जो घटस्थापन किया जाता है उसकी

विधि इस प्रकार से है :—प्रातःकाल में तेल लगाकर स्नान करके नवरात्र व्रत का संकल्प करे तथा गणपति-पूजन, पुण्याह वाचन, नान्दीश्राद्ध, मातृका पूजन, और ऋत्विक्-वरण करने की प्रतिज्ञा करे।

पूजा-विधि

आरम्भ में किसी पवित्र स्थान से मिट्टी लाकर, उसकी वेदी बनाकर उसमें जौ गेहूँ बोये। उस पर यथासामर्थ्य सुवर्ण आदि का कलश स्थापित करे तथा उस कलश पर सोना, चाँदी, ताँबा, मिट्टी अथवा पत्थर की देवी की मूर्ति बनवाकर स्थापित करे। मूर्ति न होने की अवस्था में कलश के पीछे स्वस्तिक और दोनों पार्श्वों में त्रिशूल तथा खड्ग का चिह्न बनाकर दूर्गा की पूजा करे। परन्तु इसके पहिले उस कलश को पवित्र जल से भर कर उसको हरे पत्तों से ढ़के, चन्दन लगाकर सर्व-औषधि-संस्कार करे तथा दूब, पञ्चरत्न तथा पञ्च पल्लव डालकर उस पर सूत या वस्त्र लपेटे। तदनन्तर जौ या गेहूँ से भरा हुआ एक मिट्टी का पात्र घटके मुख पर रक्खे और वरुण का पूजन कर भगवती का आवाहन करे।

भगवती का आवाहन करके आसन, पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, वस्त्र, अलङ्कार, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप और दीप आदि द्रव्यों से पूजन करके अङ्ग पूजन करना चाहिये। इसके बाद में धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, फूल और आरती करके प्रदक्षिणा कर ऋत्विक् का वरण करे और कुमारी पूजन करे। नवरात्र के दिनों में कुमारी-पूजन का बड़ा ही महत्त्व समझा जाता है। दो वर्ष की लड़की कुमारी, तीन वर्ष की त्रिमूर्तिनी, चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी, ६ वर्ष की काली, सात वर्ष की चण्डिका, आठ वर्ष की शाम्भवी, नव वर्ष की दुर्गा और दस वर्ष की सुभद्रा स्वरूप होती है। इससे अधिक आयु की कन्या को कुमारी-पूजा में सम्मिलित नहीं करना चाहिये क्योंकि स्कन्द-पुराण में लिखा है कि इससे अधिक आयु की कन्या सब कार्य में वर्जित हैः—

"अत ऊर्ध्वं तु याः कन्याः सर्व-कार्येषु वर्जिता।"

इन दिनों में एक कन्या के पूजन करने से ऐश्वर्य की, दो से भोग और मोक्ष की; तीन से धर्म, अर्थ और काम की; चार से राज्यपद की; पांच से विद्या की; छः से षट्कर्म सिद्धि की; सात से राज्य की; आठ से सम्पदा की और नौ से

पृथ्वी के प्रभुत्व की प्राप्ति होती है। अतः नवरात्र में कुमारी पूजन अवश्य करना चाहिये।

नवरात्र में देवी पूजन का अधिकार सब मनुष्यों को है। इसमें जाति-पाँति का तनिक भी विचार नहीं है। हाँ, केवल पूजा-विधि में थोड़ा अन्तर है। ब्राह्मण आदि सात्विक लोगों की पूजा मांस-रहित होती है और शूद्र आदि तामसिक लोगों की पूजा मांस के साथ होती है। वे लोग देवी को प्रसन्न करने के लिये संभवतः मद्य भी अर्पण करते हैं। प्रतिपदा को घटस्थापन करने के पश्चात् दशमी तक नित्य प्रति दुर्गा का पाठ करना चाहिये तथा जप, देवी-भागवत्-श्रवण, करते हुये उपवास या एकभुक्त रहना चाहिये। जो लोग अधिक तपस्या कर सकते हैं वे त्रिरात्र, पञ्चरात्र तथा सप्तरात्र तक का व्रत करते हैं। साधारणतया नवरात्र के दिनों में प्रतिदिन दुर्गा का एक पाठ किया जाता है। परन्तु फल-विशेष की सिद्धि के लिये ब्राह्मणों द्वारा अधिक पाठ निम्न प्रकार से कराना चाहिये—फल-सिद्धि के लिये १, उपद्रव शान्ति के लिये ३, भय से छूटने के लिये ७, राज्य के लिये ११, धन और पुत्र के लिये १६ तथा मृत्युभय से बचने के लिये १००। इन दिनों में महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती की पूजा और दुर्गा पाठ मुख्य कार्य माना जाता है। प्रातःकाल पाठ करने के पश्चात् दिनक्रम से दुर्गा जी का निम्नांकित प्रकार से दर्शन करें। पहिले दिन शैलपुत्री का, दूसरे दिन ब्रह्मचारिणी का, तीसरे दिन चन्द्रघंटा का, चौथे दिन कुष्माण्डी (दुर्गा) का, पाँचवें दिन स्कन्दमाता (वागीश्वरी) का, छठे दिन कात्यायनी का, सातवें दिन कालरात्रि का, आठवें दिन महागौरी (अन्नपूर्णा) का और नवें दिन सिद्धिदात्री का दर्शन करे।

दुर्गा जी के उपर्युक्त नव स्वरूप माने गये हैं[1]। अतः नियम के अनुसार

---

१ प्रथमं शैलपुत्रीति, द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति, कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति, षष्ठं कात्यायनी तथा।
सप्तमं कालरात्रिश्च महागौरीति चाष्टमम्।
नवमं सिद्धिदात्री च नव दुर्गाः प्रकीर्तिताः॥

दिन के क्रम से दुर्गा का दर्शन करना आवश्यक है। काशी में इन नवों दुर्गाओं के मन्दिर हैं। अतः भक्त जनता प्रतिदिन भिन्न-भिन्न दुर्गा का दर्शन करने के लिये जाती है। परन्तु इन नवों में अन्नपूर्णा तथा दुर्गाकुण्ड वाली दुर्गा जी प्रसिद्ध मानी जाती हैं। इस प्रकार नव दिन तक दुर्गा का पाठ तथा पूजन कर दसवें दिन इनका विसर्जन करे।

लौकिक स्वरूप

आजकल नवरात्र में सब लोग देवी की पूजा करते हैं। जो पढ़े-लिखे पण्डित लोग हैं वे तो अपने घर में अथवा किसी मन्दिर में जाकर दुर्गा की पोथी का पाठ करते हैं। जो लोग किसी विशेष उद्देश्य से पाठ करते हैं वे कील तथा कवच के साथ उसे पढ़ते हैं और अन्तिम दिन हवन आदि करके उसकी समाप्ति करते हैं। परन्तु जो लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं वे मन्दिरों में भगवती का दर्शन कर अपने को कृतकृत्य समझते हैं। मिर्जापूर जिले में विन्ध्याचल में स्थित विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में इन दिनों में यात्रियों की जो भीड़ होती है उसका वर्णन करना भी कठिन है। यहाँ हजारों यात्री आते हैं और मन्दिर में बैठकर पाठ करते हैं। कलकत्ते में काली जी के मन्दिर में और आसाम में कामाक्षा देवी के मन्दिर में इन दिनों अपार भीड़ होती है। यों तो दुर्गा की पूजा प्रत्येक प्रान्त में होती है परन्तु बंगाल और आसाम में इसका प्रचुर प्रचार है। बंगाली लोग शक्ति के उपासक हैं अतः वहाँ दुर्गा की पूजा विशिष्ट रूप में होना स्वाभाविक ही है। बंगाली लोग नव दिनों तक दुर्गा की जिस मूर्ति की पूजा करते हैं उसको दसवें दिन विसर्जन करने के लिये बड़े धूम-धाम से जलूस में ले चलते हैं। आगे-आगे करवाल धारिणी दुर्गा की, महिषासुर-मर्दिनी भगवती काली की मूर्ति होती है और पीछे-पीछे माँ, माँ पुकारता हुआ और काली की जय जय करता हुआ अपार जनसमूह चलता जाता है। यह दृश्य देखने योग्य होता है। दुर्गा की जय जय की ध्वनि से आकाश-मण्डल गूँज उठता है और भक्तों की भावनाओं का उद्रेक देखते ही बनता है। बाद में दुर्गा की मूर्ति को नाव पर ले जाकर गंगा के बीज में विसर्जित कर देते हैं। बलि की प्रथा अत्यन्त निन्दनीय है। यह भयंकर पशुहिंसा जितनी शीघ्र बन्द हो जाय उतना ही अच्छा हो। भगवती दुष्ट तथा अत्याचारी जीवों के खून को पीकर

प्रसन्न होती हैं, निरपराध बकरे के खून को पीकर नहीं। अतः यदि हम भगवती को प्रसन्न करना सचमुच चाहते हैं तो आत्म-बलिदान से उनको प्रसन्न करें, दूसरों की जान लेकर नहीं।

कथा

एक समय महिषासुर नाम का असुर ऐसा प्रबल हो गया था कि उसने स्वर्ग-लोक के सब देवताओं को परास्त करके इन्द्र के लोक को भी जा घेरा। इन्द्र उसके डर से भाग कर ब्रह्मा, विष्णु और महेश के पास गये। इन्द्र सहित त्रिदेवों ने आदिशक्ति भगवती का ध्यान किया। उसी क्षण सब देवताओं के अंगों में से एक तेजपुञ्ज ज्वाला के समान निकला और समस्त पृथिवी पर छा गया। उस तेज से संतप्त होकर देवताओं ने शक्ति की स्तुति करते हुये यह प्रार्थना की कि हम लोग आपका यह तेज सहन नहीं कर सकते। इस कारण कृपाकर आप मूर्तिमान् रूप धारण कीजिए। यह सुनते ही एक सुन्दर मूर्ति प्रकट हो गयी जिसके तीन नेत्र और आठ भुजायें थीं। तब सब देवताओं ने उस मूर्ति की पूजा की। विष्णु ने अपना सुदर्शन चक्र, शिव ने त्रिशूल, इन्द्र ने वज्र, वरुण ने शक्ति, यमराज ने तलवार और अग्निबाण दिया। लक्ष्मी ने अपना सब शृङ्गार उसको दिया और सवारी के लिये हिमालय ने सिंह भेजा। इस प्रकार से सुसज्जित होकर इधर से भगवती चलीं और उधर से महिषासुर आगे आया। शक्ति के साथ में जो देवताओं का दल था उसको छोड़ कर भगवती आगे बढ़ गयीं और उन्होंने महिषासुर के आगे वाले दैत्यदल पर भीषण आक्रमण किया और देखते ही देखते समस्त राक्षसों के समूह का नाश कर डाला। अब महिषासुर ही केवल बच गया था। वह अनेक आसुरी माया करते हुये युद्ध में प्रवृत्त हुआ। परन्तु भगवती ने सम्पूर्ण मायाजाल को छिन्न-भिन्न करके महिषासुर को कालपाश में लपेट कर पृथ्वी पर पटक दिया और उसकी गर्दन पर पैर रख कर चमकती तलवार से उसके सिर को काट डाला। इस प्रकार से देवताओं को कष्ट देने वाले तथा स्वर्गलोक में कुहराम मचानेवाले महिषासुर का वध करके भगवती ने देवताओं को अभयदान दिया। तभी से वे 'महिषासुर मर्दिनी' के नाम से प्रसिद्ध हो गयीं।

जिस प्रकार से सौम्यरूप में शंकर शिव के नाम से तथा भयङ्कर रूप में रुद्र

के नाम से प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार से देवी अपने सौम्यरूप में भगवती के नाम से तथा भयङ्कर रूप में दुर्गा, काली या चण्डी के नाम से विख्यात हैं। काली का नाम महिषासुर-मर्दिनी है क्योंकि इन्होंने महिष नामक राक्षस का वध किया था। दुर्गा अत्याचार को दमन करने वाली, शक्ति की देवता हैं। अतः यदि हिन्दू जाति तथा देश से नपुंसकता को दूर कर फिर से वीरता लानी है तो दुर्गा की उपासना करना आवश्यक है। दुर्गा की प्रशंसा में एक श्लोक है जिसे उनकी पूजा करते समय सतत ध्यान में रखना चाहिये :—

महत्व

या देवी सर्वभूतेषु, शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः॥

आश्विन] २३. विजया-दशमी [शुक्ल

विजया-दशमी का त्यौहार—जिसे दशहरा भी कहते हैं—आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। भगवान् रामचन्द्र ने इसी दिन लङ्का पर चढ़ाई की थी और फलस्वरूप अत्याचारी रावण का वध कर उस पर विजय प्राप्त की थी। उसी दिन से यह तिथि विजया-दशमी के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। तब से यह समय विजय-यात्रा करने के लिये तथा शत्रु को परास्त करने के लिये बड़ा समीचीन समझा जाता है। 'ज्योतिर्निबन्ध' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि आश्विन की शुक्लपक्ष की दशमी को तारा उदय होने के समय 'विजय' नामक काल होता है। वह सब कार्य की सिद्धि को देने वाला होता है।

आश्विनस्य सिते पक्षे, दशम्यां तारकोदये।
स कालो विजयो ज्ञेयः, सर्वकार्यार्थसिद्धये॥

आश्विन शुक्ल दशमी पूर्वविद्धा निषिद्ध समझी जाती है, परविद्धा शुद्ध है परन्तु श्रवणयुक्त सूर्योदय व्यापिनी तिथि सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है।

अतः इस दिन विजय की इच्छा करनेवाले राजा को चाहिये कि हाथी, घोड़ा, शस्त्रादि तथा सैन्यबल को सजाकर अपनी सीमा को उल्लंघन कर शत्रु पर आक्रमण करे। परन्तु यदि शत्रु पर आक्रमण करने का अवसर न हो तो सीमा को अवश्य ही पार करे। हेमाद्रि में लिखा है कि युद्ध का प्रसंग न होने पर भी राजा को अपनी सीमा का उल्लंघन अपना परम कर्तव्य समझ कर करनी चाहिये।

शास्त्रीय स्वरूप

श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां, काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः।
उल्लंघयेयुः सीमान्तं, तद्दिनर्क्षे ततो नरः॥

हाथी या घोड़े पर चढ़े हुये राजा को चाहिये कि अपनी सीमा के बाहर जाकर पूर्वमुख खड़े होकर शमी वृक्ष के मूल की पृथ्वी का जल से प्रोक्षण करे और शमी वृक्ष की पूजा कर नीचे के श्लोक से उससे प्रार्थना करे :—

शमी शमय मे पापं, शमी लोहितकण्टका।
धारिण्यर्जुनबाणानां, रामस्य प्रियवादिनी॥
करिष्यमाणयात्रायां; यथाकालं सुखं मम।
तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं; भव श्रीरामपूजिते॥

बाद में शमी वृक्ष के पत्ते को तोड़ लेवे और पूजास्थान की थोड़ी सी मिट्टी, तण्डुल तथा एक सुपारी रखकर कपड़े में बाँध लेवे और कार्यसिद्धि की कामना से अपने पास रक्खे। फिर आचार्यादि का आशीर्वाद प्राप्त कर वहाँ ही पूर्व दिशा में विष्णु की परिक्रमा करके अपने शत्रु के स्वरूप को हृदय में और उसकी प्रतिकृति (मूर्ति) को दृष्टि में रखकर बन्दूक या बाण से उसके हृदय के मर्मस्थल का भेदन करे और खड्ग को हाथ में लेकर दक्षिण दिशा से आरम्भ करके वृक्ष के समीप की चारों दिशाओं में जाकर सब दिशाओं को विजय करे और शत्रु को जीत लिया है—ऐसी भावना करे। इसके बाद नगर में वापस लौट कर प्रवेश-द्वार पर अपनी आरती कराकर महल में सुखपूर्वक निवास करे।

विजयादशमी का त्यौहार भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में मनाया जाता है।

यह प्रधानतया क्षत्रिय राजाओं का त्यौहार है। इसीलिये इसकी जो शोभा भारतीय रियासतों (स्टेट्स) में देखने को मिलती हैं वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं। राजपूताने के क्षत्रिय राजा सब से अधिक चिरकाल से अपनी वीरता के लिये विख्यात रहे हैं अतः उनके यहाँ विजया-दशमी का त्यौहार बड़े ठाट-बाट से मनाया जाना स्वाभाविक है। राजपूताने की रियासतों में तथा मैसूर और बड़ौदा राज्य में यह त्यौहार शाही शान और शौकत के साथ मनाया जाता है। इस दिन राजा लोग अपने प्राचीन अस्त्र तथा शस्त्रों को निकाल कर उन्हें मँजवाते हैं तथा पालिश लगाकर साफ करवाते हैं। घोड़ों पर सुन्दर काठी और हाथियों पर ज़री के काम के सुन्दर झूल ओढ़ाये जाते हैं। सोने और चाँदी की बनी हुयी बेशकीमती सवारियाँ निकाली जाती हैं तथा राज्य में जो बहुमूल्य, दर्शनीय सामग्री रहती है उसका प्रदर्शन किया जाता है। अम्बारी से सजाये गये भीमकाय गजराज पर महाराजाधिराज विराजते हैं तथा पीछे के हाथियों पर युवराज तथा मन्त्रिगण। उनके बाद में घुड़सवारों की सेना चलती है और सबके बाद में पैदल सिपाही। इस प्रकार विजया-दशमी का यह राजकीय जुलूस बड़ी सजधज के साथ महल से निकलता है। जलूस के आगे-आगे उत्साह प्रदान करने वाला 'मिलीटरी बैण्ड' बजता चलता है जो अपनी एक एक चोट पर शत्रु पर टूट पड़ने के लिये उत्तेजित करता है। सैनिकों के बीच में लोगों की रंग-बिरंग की पगड़ियाँ बड़ी ही सुन्दर लगती हैं। इस प्रकार यह राजकीय जलूस नगर के बाहर जाता है। शमी वृक्ष के पास राजा या राणा साहब उतर कर उसकी शास्त्रीय विधि से पूजा करते हैं तथा उसकी पत्तियों को तोड़कर घर लाते हैं। शमी की पूजा की समाप्ति पर उसी प्रकार जलूस वापस लौटता है और गरीबों को दान देकर यह विजया का उत्सव समाप्त समझा जाता है। मैसूर राज्य की विजया-दशमी का जलूस देखने का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ है वही इसके सौंदर्य को समझ सकते है।

वर्तमान रूप

यह तो हुई राजाओं की बात। अब साधारण जनता को लीजिये। विजय-दशमी के कई दिन पूर्व से ही नगर के अखाड़े में तरह तरह के कसरत अपने मल्लों को सिखाते हैं। विजया के दिन प्रत्येक शहर में छोटा बड़ा जलूस निकलता है जिसमें काली

का चित्र तथा अन्य देवताओं की मूर्तियाँ होती है। पहलवान लोग तलवार भाँजकर, मुग्दर उठाकर, चाकू का खेल दिखा कर, बनैठी भाँजकर तथा अनेक प्रकार के कसरत के काम दिखा कर अपने बल का प्रदर्शन करते हैं। लोगों के हृदय में उत्साह की मात्रा प्रचुर रूप में पायी जाती है। बड़े शहरों में कई अखाड़ों के जलूस निकलते हैं जो बड़े ही सुन्दर होते हैं। जलूस की समाप्ति के बाद रात को रामलीला होती है जिसमें राम का लंका पर आक्रमण तथा रावण आदि के बध का बड़ा सुन्दर दृश्य दिखाया जाता है। बाँस तथा कागज़ की सहायता से भीमकाय रावण की मूर्ति बनायी जाती है तथा राम के द्वारा उसका नाश कराया जाता है। इस प्रकार यह रामलीला बड़ी प्रभावशालिनी होती है। कुछ लोग आज नीलकण्ठ का दर्शन करते हैं क्योंकि इस दिन नीलकण्ठ का दर्शन पुण्य को देने वाला समझा जाता है।

एक बार पार्वती जी ने महादेव जी से पूछा कि संसार में विजय-दशमी का जो त्यौहार प्रचलित है उसका क्या फल है? इस पर शिव जी ने उत्तर दिया :—

कथा

आश्विन शुक्ला दसमी को नक्षत्रों के उदय होने पर जो विजय नामक काल होता है जो सब कामनाओं को देने वाला होता है। शत्रु को विजय करने वाले राजा को इसी समय प्रस्थान करना चाहिये। इसी दिन मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जी ने लंका पर चढ़ाई की थी और फल-स्वरूप रावण पर विजय प्राप्त किया था। इसीलिये यह दिन पवित्र माना गया है। क्षत्रिय लोग इसे अपना मुख्य त्यौहार मानते हैं यदि शत्रु से युद्ध करने का प्रसङ्ग न भी हो तो इस काल में राजा को अपनी सीमा का उल्लंघन अवश्य करना चाहिये। अपनी सेना को सजाकर शमी वृक्ष का पूजन कर उससे यह प्रार्थना करे कि:—"हे शमी! तू पापों का नाश करने वाला है। तू ने अर्जुन के धनुष को धारण किया और रामचन्द्र जी से कैसी प्रियवाणी कही।"

यह सुन कर पार्वती ने कौतूहल-वश होकर फिर यह पूछा कि "शमी ने अर्जुन का धनुष बाण कब और कैसे तथा किस कारण धारण किया था एवं उसने रामचन्द्र जी से कैसे प्रियवाणी कही? इसे बतलाइये। शिव जी ने उत्तर में कहा—जब दुर्योधन ने पाण्डवों को बारह वर्ष तक वनवास तथा एक वर्ष के

लिये अज्ञात वास दिया था उसी अज्ञात वास के दिनों में अर्जुन अपना धनुष बाण एक शमी वृक्ष पर रख कर विराट् राजा के यहाँ बृहन्नला के वेष में रहा करते थे। एक दिन विराट् के पुत्र कुमार उत्तर ने गाँवों की रक्षा के लिये अर्जुन को अपने साथ लिया और अर्जुन ने शमी वृक्ष पर रक्खे हुये अपने हथियार को उठाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। शमी ने एक वर्ष पर्यन्त देवता की तरह अर्जुन के इस प्रसिद्ध हथियार की रक्षा की थी। पुनः जब विजया दशमी के दिन रामचन्द्र जी ने लंका पर चढ़ाई करने के लिये प्रस्थान किया तब भी शमी ने कहा कि आप की विजय होगी। यह प्रियवाणी थी जिसे शमी ने रामचन्द्र जी से कही थी। तभी से विजय काल में शमी की पूजा होती चली आ रही है।

विजया-दशमी का त्यौहार हमारा परम पुनीत पर्व है। यह हमारा जातीय त्यौहार है। यह हमारी संस्कृति का व्रत है। इसी दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी अथवा धर्म अधर्म पर अधिकार जमाया था या न्याय ने अत्याचार को कुचल कर जीत पायी थी।

महत्त्व

विजया दशमी का त्यौहार हम लोगों को यह बतलाता है कि प्राचीन आर्य हिन्दू अपनी स्त्रियों का कितना सम्मान करते थे, उनके हृदय में अपनी ललनाओं के लिये कितना उच्च आसन था। प्राण भले ही चलें जाँय परन्तु वे अपनी गृह देवियों का अपमान नहीं सह सकते थे। दुष्ट रावण ने आर्या सीता का अपहरण किया था। उसने एक आर्य की सती स्त्री को चुरा लिया था। भला इस अपमान को मनस्वी राम कब सहने वाले थे। उन्होंने अनेक कठिनाइयों का सामना किया, बन्दरों और भालुओं की सेना इकट्ठी की और अन्त में रावण की राजधानी लंका पर चढ़ाई कर ही दी। सोने की बनी हुई लंका को उन्होंने धूल में मिला दिया और लड़ाई के मैदान में रावण को अकेले ही नहीं—बल्कि सपरिवार—यमलोक का टिकट कटाकर उसे विदा किया। यह था एक आर्य की स्त्री को चुराने का फल, जिसे रावण ने अकेले ही नहीं बल्कि पुत्र एवं पौत्रों के साथ भुगता। रावण ने देवताओं पर अनेक अत्याचार किया था, उन्हें अनेक प्रकार से सताया था तथा इन्हें पीड़ा पहुँचाई थी। देवताओं का पक्ष न्याय्य था और

रावण का पक्ष सरासर अन्याय से परिपूर्ण। अतः राम ने अन्यायी रावण का वध कर अत्याचारी रावण का समूल नाश कर, इस लोक में न्याय और धर्म की स्थापना की। आज कल हिन्दुओं की हजारों स्त्रियाँ भगायी जा रही हैं, सीमा प्रान्त में रोज ही किड्नैपिङ्ग (चुराने) का समाचार सुनने को मिलता है परन्तु हमारे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। हम स्त्रीत्व के उद्धारक राम की विजय-दशमी मनाने के लिये तब तक अधिकारी नहीं, जब तक हम लोग अपनी स्त्रियों का आदर एवं रक्षा करना नहीं सीखते तथा अत्याचार एवं अन्याय को समूल नष्ट कर देने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिये उद्यत नहीं।

कार्तिक] [कृष्ण

२४. धनतेरस

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को 'धन तेरस' के नाम से पुकारते हैं जो 'धन-त्रयोदशी' का अपभ्रंश रूप है। इसे छोटी दिवाली भी कहते हैं। इस दिन यमराज की प्रसन्नता के लिये दीपदान किया जाता है। लोग अपने मकानों तथा दूकानों के ऊपर घी तेल के दीये जलाते हैं। इस दिन भी दिवाली की सी शोभा होती है परन्तु अल्पमात्रा में। संभवतः इसीलिये इसको छोटी दिवाली कहते हैं। इस दिन काशी के ठठेरी बाजार में इसकी शोभा देखने में आती है। वहाँ के दूकानदार अपने पीतल के बर्तन को साफ करके सजाते तथा कीमती साड़ियों को निकाल कर प्रदर्शन करते हैं। यह दृश्य बड़ा ही रमणीय तथा चित्ताकर्षक होता है। इस दिन नये बर्तन को खरीदना शुभ समझा जाता है और प्रायः सभी लोग छोटा या बड़ा बर्तन खरीदते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इसदिन बर्तन खरीदने से लक्ष्मी (धन) का घर में वास होता है। इसीलिये इस तिथि को 'धनतेरस' कहते हैं—अर्थात् वह त्रयोदशी जिसदिन धन घर में आता है। शहरों में इस दिन दिवाली का छोटा रूप देखने को मिलता है।

एक बार यमराज ने अपने दूतों से पूछा कि मेरी आज्ञा के अनुसार जब तुम

लोग प्राणियों के प्राण हरते हो तो क्या किसी समय तुमलोगों को किसी मनुष्य पर दया नहीं आती ? यदि आती है तो कब और कहाँ ?

कथा

इस पर दूतों ने उत्तर दिया—हंस नाम का एक बड़ा भारी राजा था। वह किसी समय शिकार के लिये बन गया हुआ था। संयोगवश वह अपने साथियों से बिछुड़ गया और जङ्गल में इधर उधर भटकने लगा। जङ्गल में घूमता घामता वह हेम नामक राजा के राज्य में चला गया। वहाँ हेम राजा ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। उस समय दैवयोग से हेम राजा के यहाँ एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ था। परन्तु छठियार (जन्म के छठें दिन का उत्सव) के दिन देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि राजन् ! तुम्हारा यह लड़का चार दिन के बाद मर जायेगा। यह सुन कर राजा बहुत ही दुःखी हुआ। राजा हंस को—जो उस समय हेम राजा का अतिथि था—जब यह ज्ञात हुआ तो उसने हेमराज के पुत्र को मृत्यु से बचाने के लिये उसे यमुना की एक गुफा में छिपा कर रक्खा। परन्तु युवा होने पर जब उसका विवाह हुआ तब हम लोगों (यमदूतों) ने ठीक चौथे दिन उसका प्राण हरण कर लिया। उस मंगलमय उत्सव के समय हम लोगों का यह काम अत्यन्त घृणित था और हम लोगों को उसके प्राण हरण करने में बड़ी दया आयी। हम लोगों का हृदय अत्यन्त दुःखी हो गया। अतः हे स्वामी ! कृपा करके कोई ऐसी युक्ति बतलाइये जिससे प्राणी इस प्रकार की आकस्मिक दुर्घटना से बच सके। इस बात को सुनकर यमराज ने इस दिन दीप-दान देने का विधान बतलाया और कहा कि जो लोग मेरे लिये धनतेरस के दिन दीप-दान और व्रत करेंगे उनकी असामयिक मृत्यु कदापि न होगी।

इस दिन यमराज की पूजा की जाती है जिससे वे प्रसन्न रहें तथा असामयिक मृत्यु का निवारण करते रहें। धनतेरस के दिन हल से जुती हुयी मिट्टी को दूध में भिगों कर सेमल वृक्ष की डाली में लगाये और

पूजा-विधि

उसको तीन बार अपने शरीर पर छिड़क कर कुंकुंम का टीका लगायें तथा पुनः कार्तिक स्नान करे। प्रदोष के समय मठ, मन्दिर, कुँआ, बावली, बाग, गोशाला, तथा गजशाला आदि स्थानों में तीन दिन तक लगातार

दीपक जलाये। यदि तुला राशि का सूर्य हो तो चतुर्दशी और आमावस्या की शाम को एक जली लकड़ी लेकर तथा उसको घूमा कर पितरों को भी मार्ग दिखाने का विधान है। इस प्रकार धनतेरस के दिन दीपदान तथा यमराज की पूजा करने से आकालिक मृत्यु का भय जाता रहता है।

कार्तिक] २५. नरक-चतुर्दशी [कृष्ण

कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को नरक-चतुर्दशी का व्रत होता है। सनत्कुमार संहिता में लिखा है कि इस चतुर्दशी को पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। इस दिन सूर्य निकलने से पूर्व-प्रत्यूष काल में स्नान करना चाहिये[1]। जो मनुष्य इस तिथि को अरुणोदय के पश्चात् स्नान करता है उसके वर्ष भर के कार्यों का नाश हो जाता है। इस दिन तेल लगाकर स्नान करने का विधान है और शरीर पर अपामार्ग का भी प्रोक्षण करना चाहिये। अपामार्ग प्रोक्षण के समय निम्नलिखित मन्त्र को कहना चाहिये।

पूजाविधि

सितालोष्टसमायुक्तं, सकण्टकदलान्वितम्।
हर पापमपामार्ग! भ्राम्यमाण पुनः पुनः॥

स्नान करने के पश्चात् शुद्ध वस्त्र पहन कर, तिलक लगा कर, कार्तिक स्नान कर तथा यमराज का तर्पण कर तीन-तीन जलाञ्जलि देनी चाहिये। जिसका पिता जीवित हो उसको भी तर्पण करना चाहिये। सायंकाल को दीपदान करना आवश्यक है। यमराज की प्रसन्नता के लिये दीपक जलाने की इस विधि को त्रयोदशी से लेकर अमावस्या तक करनी चाहिये। इसका कारण यह है कि वामन भगवान् ने क्रमशः इन तीन दिनों में बलि की पृथ्वी को नाप लिया था।

---

१ पूर्वविद्ध-चतुर्दश्यामाश्विनस्य सितेतरे।
पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात् प्रयत्नतः॥

—सनत्कुमार संहिता।

पृथ्वी नापने के पश्चात् वामन भगवान् ने सन्तुष्ट होकर बलि से कहा—तुम वर माँगो। तब बलि ने प्रसन्न होकर कहा—भगवन्! मेरे लिये तो वरदान की आवश्यकता नहीं है परन्तु लोगों की भलाई के लिये एक वरदान माँगता हूँ। त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या—इन तीन दिनों में आपने मेरा राज्य नापा है अतः जो मनुष्य मेरे राज्य में चतुर्दशी के दिन यम के लिये दीपक जलावे उसको यम की पीड़ा न होनी चाहिये। अर्थात् वह नरक में न जाय। भगवान् ने कहा—'एवमस्तु'। तभी से नरक-चतुर्दशी का यह व्रत नरक से निवृत्ति के लिये किया जाता है।

कथा

कार्तिक] **२६. दीपावली** [कृष्ण

दीपावली का त्यौहार हमारा सामाजिक त्यौहार है। परन्तु सब लोग इसे नियमपूर्वक करें अतः इसे धार्मिक रूप दे दिया गया है। इस दिन सर्वत्र दीपक जलाये जाते हैं और अँधेरी रात भी प्रकाशित हो जाती है। दीपावली को मनाने के लिये महीनों पहिले से मकान की सफाई होने लगती है, घरों में सफेदी की जाती है, टूटे-फूटे स्थानों की मरम्मत की जाती है तथा घर में से कूड़ा-करकट निकाल कर उसे अत्यन्त स्वच्छ बना दिया जाता है। जिस दिन दीपावली होती है उस दिन घी तथा तेल के असंख्य दीपकों को लोग रातभर तक जलाते हैं। गरीब या निर्धन मनुष्य भी अपने घर दीपक अवश्य जलाते हैं चाहे वह दो ही चार क्यों न हों। इस त्यौहार को सभी वर्ण तथा जातियाँ मनाती हैं। क्या शूद्र तथा क्या ब्राह्मण, सभी अपने घर को आज प्रकाशित कर दीपावली का उत्सव मनाते हैं। होली को छोड़ कर यही हमारा सर्व-प्रचलित तथा लोकप्रिय व्रत है। दिन में लोग नाना प्रकार के पकवान खाते हैं तथा रात में लक्ष्मी की पूजा कर जागरण करते हैं। लोगों का विश्वास है कि जो इस दिन रात भर जागरण करता है उसके घर लक्ष्मी आती हैं तथा जो सो जाता है उसके घर को रुष्ट होकर

लक्ष्मी नहीं आतीं। अनेक भक्तगण आज के दिन रात-भर जागरण करते हैं तथा लक्ष्मी की पूजा में लीन रहते हैं।

पूजाविधि

दीपावली के दिन सायंकाल के समय लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिये। नाना प्रकार के नवीन स्वच्छ वस्त्रों से लक्ष्मी का मण्डप बनाकर, अनेक पत्र-पुष्प, तोरण, ध्वजा और पताका आदि से उसको सुसज्जित करके तथा उसमें अनेक देवी देवताओं के साथ भगवती लक्ष्मी का षोडशोपचार-पूर्वक पूजन करना चाहिये। दीपों के समुदाय के द्वारा वृक्ष का आकार बनाकर के खजाने में अथवा किसी अन्य पवित्र स्थान पर वेदी बना कर अक्षत आदि से अष्टदल कमल लिखे और उसपर लक्ष्मी की मूर्ति की स्थापना करके 'लक्ष्म्यै नमः', 'इन्द्राय नमः' और 'कुबेराय नमः' इन नामों से तीनों का पृथक् पृथक् यथाविधि पूजन करे और नीचे के मन्त्र से लक्ष्मी की आराधना करे—

नमस्ते सर्वदेवानां, वरदासि हरेः प्रिया।
या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मेस्यात् तवदर्शनात्॥

इसके बाद इस दूसरे मन्त्र से कुबेर का ध्यान करना चाहिये जिससे धनधान्य की वृद्धि होती है।

धनदाय नमस्तुभ्यं, निधिपद्माधिपाय च।
भवन्तु त्वत्प्रसादान्मे; धनधान्यादिसम्पदः॥

पूजा के पश्चात् प्रदक्षिणा करके प्रणाम करे तथा रात्रि भर जागरण करता रहे।

कथा

लक्ष्मी पूजन की कथा सनत्कुमार संहिता में विस्तार पूर्वक लिखी गयी है। वहीं से लेकर इस कथा का सारांश लिखा जाता है— एक बार मुनीश्वरों ने सनत्कुमार से पूछा कि लक्ष्मी की पूजा के साथ साथ अन्य देवी तथा देवताओं की पूजा का जो विधान किया गया है उसका क्या कारण है? तब सनत्कुमार ने उत्तर दिया—राजा बलि के कारागार में लक्ष्मी समस्त देवताओं के साथ बन्धन में पड़ी हुयी थीं। आज के दिन विष्णु भगवान् ने उन सब को कैद से छुड़ाया था। सब देवता बन्धनमुक्त होते ही

श्रीलक्ष्मी जी के साथ क्षीर-सागर में जाकर सो गये थे। इस कारण अब हमको लक्ष्मी के साथ उनके शयन का ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर देना चाहिये जिससे वे लोग क्षीर-सागर में न जाकर सुन्दर स्थान पाकर वहीं सो रहें। अतः रेशमी तोसक में सुन्दर मोतियों की झालर लगी होनी चाहिये। उसके ऊपर अत्यन्त स्वच्छ चादर तथा मुलायम तकिया होना चाहिये तथा मखमल की बनी दुलाई होनी चाहिये। उसके ऊपर कमलपुष्पों का मण्डप बनाना चाहिये क्योंकि कमल लक्ष्मी का निवास-स्थान है। हे मुनीश्वरों! जो लोग लक्ष्मी की इस प्रकार पूजा करते हैं उनको छोड़कर लक्ष्मी अन्यत्र कहीं नहीं जातीं। परन्तु जो लोग आलस्य और निद्रा में पड़े रह कर लक्ष्मी की पूजा नहीं करते उन्हें सदा दरिद्रता का शिकार बना रहना पड़ता है।

रात्रि के समय लक्ष्मी को आवाहन करे और गाय के दूध के बने हुये खोये में मिश्री आदि मिला कर लड्डू बनाये और लक्ष्मी को भोग लगाये। इसके बाद अन्य फूल, फल तथा मिष्ठान्न लक्ष्मी को अर्पण कर दीप-दान करे। दीपकों को नदी, तालाब, कुयें तथा चौराहे आदि स्थानों पर रखवा देना चाहिये तथा ब्राह्मण भोजन भी कराना चाहिये।

राजा को चाहिये कि दूसरे दिन प्रातःकाल गाँव के सब बालकों को ढिंढोरा पिटवा कर कहला दे "आज ग्राम के सब बालक नाना प्रकार के खेल खेलें।" यदि बालकों का समूह आग जलाकर खेले और उस आग में ज्वाला प्रगट न हो तो जानना चाहिये कि इस वर्ष महामारी या घोर दुर्भिक्ष पड़ने की आशंका है। यदि बालक आपस में लड़ें तो राजयुद्ध होने की संभावना होती है और यदि बालक रोयें तो वर्षा का अभाव समझ लेना चाहिये। यदि बालक लकड़ी का घोड़ा बनाकर खेलें तो यह समझना चाहिये कि अन्य राज पर विजय होगी। यदि बालक अन्न या पानी को चुरायें तो इससे अकाल लक्षित करना चाहिये। इस प्रकार शकुन देखना चाहिये। इस अवसर पर इन तीन दिनों में जुआ खेलना आदि निषिद्ध कर्मों का भी विधान है। परन्तु जुआ खेलना आवश्यक कर्म नहीं है। चतुर मनुष्यों को चाहिये कि इन कुकर्मों से दूर ही रहे।

दीपावली का दिन सचमुच बड़े आनन्द का दिन है। हमारे अन्य व्रत आंतरिक शुद्धि के लिये किये जाते हैं परन्तु यह बाह्य शुद्धि के किया जाता है क्योंकि हृदय तभी शुद्ध हो सकता है जब हमारा शरीर तथा हमारा घर पवित्र हो। इसी लिये इस त्यौहार को मनाने के लिये महीनों पहिले से तैयारियाँ होने लगती हैं। लोग अपने टूटे फूटे घरों की मरम्मत कराने लगते हैं तथा घरों में सफेदी होने लगती है। दूकानदार अपने दूकान की सफाई करते हैं, ठठेरे अपने पुराने बर्तनों को माँज कर चमचमा देते हैं। नीच जाति के लोग जो चूना से अपने घर को पुतवाने में असमर्थ हैं गोबर और मिट्टी से ही अपने घर को लीपते हैं। इस प्रकार सब लोग दिवाली के दिन के लिये अपने घर को स्वच्छ करते हैं। दीपावली के दिन घी तथा तेल से भरे हुये दीपक मकानों के ऊपर, कुयें पर तथा बरामदे में रक्खे जाते हैं। कुछ लोग कण्डील जलाते हैं और आकाश दीप भी दिखलाते हैं। दिवाली के दिन छोटे छोटे असंख्य जलते हुये दीपकों के समूह को देखकर बड़ा ही आनन्द आता है। अमावस्या की अँधेरी रात में इन दीपकों को देखकर ऐसा मालूम होता है मानों असंख्य तारागण पृथ्वी पर उतर कर प्रकाशित हो रहे हों। यों तो प्रत्येक स्थान में दिवाली की अपूर्व शोभा होती है परन्तु बम्बई, अमृतसर तथा काशी की दीवाली प्रसिद्ध मानी जाती है। बम्बई में जलते हुये अगणित दीयों का प्रकाश जब समुद्र में पड़ता है तो उसकी ऐसी अपूर्व शोभा होती है जिसका वर्णन करना असंभव है। आजकल बिजली के युग में दीपकों के स्थान में अनेक धनी मानी पुरुष अनेक रंग के बल्बों का प्रयोग करते हैं तथा बड़ी सुन्दर अनेक रंगवाली रोशनी पैदा करके दर्शकों का मन हर लेते हैं। परन्तु जिस सिद्धान्त से दीपावली का त्यौहार मनाया जाता है उसकी सिद्धि बिजली जलाने से नहीं होती। इस दिन मित्रगण आपस में मिलते हैं तथा अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिये एक दूसरे के घर मिठाइयाँ भी भेजवाते हैं। इस अवसर पर सबसे दूषित प्रथा जुआ का खेलना है। इन दिनों सड़कों पर तथा गलियों में छोटे छोटे बच्चे भी 'एक लगाओ और तीन पावो' की आवाज लगाते फिरते है। अनेक धनी मानी लोग भी जुआ खेलते हैं। सरकार की ओर से भी इन दिनों

वर्तमान रूप

जुआ खेलने पर विशेष प्रतिबन्ध नहीं रहता। अतः कितने आदमी सब कुछ खो कर दरिद्र बन जाते हैं। धार्मिक जनता रात्रि में लक्ष्मी की पूजा कर जागरण करती हुयी इस त्यौहार को समाप्त करती है। बनिया लोग इस दिन अपना नया बही-खाता प्रारम्भ करते हैं।

महत्त्व

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है कि दीपावली हमारा सामाजिक त्यौहार है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इस बात में है कि जहाँ हमारे अन्य व्रत और त्यौहार आन्तरिक शुद्धि तथा पवित्रता की ओर ध्यान देते हैं वहाँ यह बाह्य शुद्धि तथा स्वच्छता पर ज़ोर देता है। जबतक हमारा शरीर, घर और पड़ोस स्वच्छ नहीं रहता, तबतक हम अपनी आन्तरिक शुद्धि नहीं कर सकते। भला जब घर में कूड़ा-करकट पड़ा हो तब वहाँ क्या देवता की पूजा करने में मन लगेगा? कदापि नहीं। अतः अन्य व्रतों को हम तभी सफलता पूर्वक कर सकते हैं जब हम अपने शरीर और घर को शुद्ध रक्खें। घी तथा तेल के दीये जलाने से घर का वातावरण शुद्ध होता है तथा उसके धुयें से मेघ बन कर जल की वृष्टि होती है। बरसात के कारण घर में नमी आ जाती है, वायु बिगड़ जाती है अतः दीपावली के समय घर की सफाई कर, दीपक जलाने से घर की नमी दूर होती है तथा वातावरण शुद्ध हो जाता है। आजकल की म्युनिसिपलिटी में जिस सफाई पर इतना जोर दिया जा रहा है उसका प्रबन्ध हमारे ऋषि मुनियों ने आज से हजारों वर्ष पहिले ही से कर रक्खा था। हमारे पूर्वजों ने आन्तरिक शुद्धता के साथ ही बाह्य शुचिता के भी महत्त्व को समझा था और इसीलिये उन्होंने दिवाली के त्यौहार की सृष्टि की थी। म्युनिसिपलिटी के कानून से डर कर भले ही कोई घर की सफाई न करे परन्तु दीपावली के दिन सभी अपने घर को स्वच्छ रखना परम कर्तव्य समझते हैं। दिवाली हमें उस 'सिविक सेन्स' की शिक्षा देती है जिसका अध्यापन आजकल कालेजों में बड़े परिश्रम से किया जा रहा है। यही दिवाली का महत्त्व है। अतः हम लोगों का यह परम कर्तव्य है कि इस दिन घर की सफाई करके, गन्दगी से उत्पन्न होने वाले रोगों को दूर कर राष्ट्र की स्वास्थ्यरूपी लक्ष्मी की आराधना करें।

२७. अन्नकूट

कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् को अन्नकूट का महोत्सव मनाया जाता है। सनत्कुमार संहिता में लिखा है कि कार्तिक के शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् को अन्नकूट और गोवर्धन की पूजा का उत्सव मनाना चाहिये क्योंकि इससे विष्णु प्रसन्न होते हैं :—

कार्तिकस्य सिते पक्षे, अन्नकूटं समाचरेत्।
गोवर्धनोत्सवञ्चैव, श्री विष्णुः प्रियतामिति ॥

वास्तव में अन्नकूट का उत्सव गोवर्धन की पूजा का त्यौहार है। प्राचीनकाल में जनता इन्द्र की पूजा किया करती थी और इन्द्रभगवान् को भोग लगाने के लिये तरह तरह के पक्वान्न तथा मिठाइयाँ बनाई जाती थीं। भगवान् इन्द्र इनको ग्रहण करते थे और प्रसन्न होकर लोगों का कल्याण करते थे। यद्यपि अब इन्द्र की पूजा न होकर गोवर्धन की पूजा होती है परन्तु अन्नकूट की वही प्राचीन परम्परा अभी तक अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। अन्नकूट के उत्सव का यही रहस्य है।

कथा

एक बार बालखिल्य नामक महर्षि ने अन्य ऋषियों से कहा कि कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को अन्नकूट करके गोवर्धन की पूजा करनी चाहिये जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जायँ। इस पर ऋषियों ने पूछा कि महात्मन्! यह गोवर्धन कौन है जिसकी पूजा के लिये आप कह रहे हैं और इसका फल क्या है? तब बालखिल्य ने कहा—एक समय श्रीकृष्ण अपने समस्त संगी ग्वालबालों के साथ गौवें चरा रहे थे। गायों को चराते हुये वे गोवर्धन पर्वत की घाटी में पहुँच गये। वहाँ जाकर सब ग्वाल बालों ने अपनी पोटली में से रोटी निकाल कर खानी शुरू कर दी। भोजन के उपरान्त उन लोगों ने जंगल में जाकर लताओं को इकट्ठा कर एक मण्डप बनाना प्रारम्भ कर दिया। श्री कृष्ण ने पूछा कि आज किसी देवता का महोत्सव है? यदि है तो

किसका ? इस पर ग्वालों ने उत्तर दिया कि आज व्रज में बड़ा भारी उत्सव होने वाला है और घर घर पक्वान्न बन रहा है। कृष्ण ने पूछा कि क्या यह किसी प्रत्यक्ष देवता का उत्सव है जो स्वयं आकर इस पक्वान्न का ग्रहण करते हैं ? यदि नहीं तो तुम लोगों के समान मूर्ख दूसरा नहीं है। इस पर ग्वालों ने उत्तर दिया कि ए कृष्ण तुम्हें वृत्रासुर के मारने वाले तथा समय पर वर्षा बरसा कर सुभिक्ष करने वाले इन्द्र की इस प्रकार निन्दा करना उचित नहीं है। यह महोत्सव किसी सामान्य देवता का नहीं है बल्कि महाप्रतापी इन्द्र का यह इन्द्रोज नामक यज्ञ है। जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक इस इन्द्रमख (यज्ञ) को करता है उसके देश में अति वृष्टि और अनावृष्टि नहीं होती और प्रजा सुखपूर्वक रहती हैं।

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—यह गोवर्धन पर्वतही सुभिक्ष और वृष्टि को करने वाला है। इसी की पूजा मथुरा और गोकुल के लोगों ने आज की है और हम लोगों का हितकर्ता भी यही है। इसलिये मैं गोवर्धन की पूजा करना ही अधिक उचित समझता हूँ। कृष्ण की इस बात का सब ग्वालों ने समर्थन किया। फल-स्वरूप यशोदाजी की प्रेरणा से नन्द ने सब गोप-ग्वालों की एक सभा की और कृष्ण से पूछा कि इन्द्र की पूजा करने से तो देश में सुभिक्ष होता है परन्तु गोवर्धन की पूजा करने से क्या लाभ होगा इसको बतलाओ।

कृष्ण ने कहा कि कर्म के अनुसार ही सब कार्य होता है ? इस संसार में रजोगुण से प्रेरित होकर मेघ वर्षा करते हैं। हम लोग गोप हैं। अतः हम लोगों की आजीविका का सम्बंध इस गोवर्धन पर्वत से ही है। अतः मेरी समझ में इसी की पूजा करना आवश्यक है। कृष्ण के इस वचन को सुन कर सब गोप लोगों ने इन्द्र की पूजा को छोड़ कर गोवर्धन की पूजा करनी शुरू कर दी। श्री कृष्ण ने अपने आधिदैविक रूप से पर्वत में प्रवेश किया और व्रजवासियों के द्वारा चढ़ाये गये सब पदार्थों का भक्षण किया।

जिस समय व्रजवासी लोग गोवर्धन की पूजा कर रहे थे उसी समय नारद जी कहीं से घूमते हुये आ पहुँचे। उन्होंने व्रजवासियों से पूछा कि यह किस देवता को मनाया जा रहा है ? तब उन लोगों ने कहा—गोवर्धन की। इतना सुनकर नारद जी इन्द्रलोक को चले गये और इन्द्र से सब समाचार कह

मुनाया। यह सुनकर इन्द्र बहुत क्रुद्ध हुये तथा लगातार प्रलयकाल के सदृश मूसलधार वृष्टि करने लगे। लगातार वृष्टि के कारण ब्रज की जनता व्याकुल होगई। उन्होंने अपना दुःख को कृष्ण से कहा। तब उन्होंने अपनी कानी अङ्गुली पर गोवर्धन पर्वत को धारण कर लिया और सब व्रजवासियों को उसी पर्वत के नीचे स्थान दिया। यह कौतूहल देखकर तथा ब्रह्मा के द्वारा श्रीकृष्ण की बात जानकर इन्द्र स्वयं आये और उनसे क्षमा प्रार्थना की। इस प्रकार गोवर्धन पूजा कर कृष्ण ने इन्द्र को गर्व को चूर कर दिया तभी से अन्नकूट के दिन गोवर्धन पूजा का प्रचार हुआ।

वर्तमान स्वरूप

व्रजमण्डल में खासकर गोवर्धन में अन्नकूट का त्योहार बड़े ठाट बाट से मनाया जाता है। उस दिन तरह तरह के पक्वान्न तथा मिठाइयों का गोवर्धन को भोग लगाया जाता है। राजपूताने में नाथद्वारा नामक स्थान में तथा काशी में अन्नपूर्णा के मन्दिर में मिठाई और भात के पहाड़ बनाये जाते हैं तथा छप्पन प्रकार के पक्वान्नों का भोग लगाया जाता है। सचमुच यह दृश्य देखने लायक होता है। इसी दिन अन्नपूर्णा का नाम सार्थक जान पड़ता है। परन्तु जिस उद्देश्य को लेकर यह अन्नकूट का उत्सव प्राचीन समय में होता रहा अब वह उद्देश्य बिल्कुल नहीं है। अब न तो इन्द्र की पूजा होती है और न गोवर्धन की। केवल मिठाई का गोवर्धन बनाकर उसके आकृति की नकल अवश्य होती है।

कार्तिक]

२८. अक्षय-नवमी

[शुक्ल

कार्तिक शुक्ला नवमी को 'अक्षय-नवमी' के नाम से पुकारते हैं क्योंकि इस दिन जो दान दिया जाता है उसका 'अक्षय' फल होता है। इसे 'धात्री-नवमी' या 'कुष्माण्डनवमी' भी कहते हैं। इसके 'कुष्माण्डनवमी' नामकरण का कारण यह है कि इस दिन कुष्माण्ड अर्थात् कोहड़ा दान करने का माहात्म्य है। आज के

दिन पूर्वाह्न-व्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो अथवा न हो तो ब्रह्मवैवर्त के निम्नांकित वचन के अनुसार पूर्वविद्धा लेनी चाहिये।

अष्टम्या नवमी विद्धा, कर्तव्या फलकांक्षिणा।
न कुर्यान्नवमीं तात, दशम्या तु कदाचन॥

इस दिन का किया हुआ पूजा पाठ और दिया हुआ दान कभी क्षय नहीं होता। इस दिन गो, भू, सोना, और वस्त्र तथा आभूषण का दान किया जाय तो अपने भाग्य के अनुसार इन्द्रत्व, शूरत्व और नराधिपत्व की प्राप्ति होती है। ब्रह्महत्या के समान पाप भी मिट जाता है। इसे धातृ नवमी भी कहते हैं। अतः धातृ-वृक्ष (आँवला) के नीचे पूर्वाभिमुख बैठ कर 'ओऽम् धात्र्यै नमः' से उसका आवाहनादि षोडशोपचार अथवा स्नानगन्धादि पञ्चोपचार पूजन करके इस वृक्ष की मूल में दूध के धारा देनी चाहिये। पुनः उस वृक्ष को सूत से आवेष्ठित करे और कर्पूर तथा धूप बत्ती जला कर उसकी आरती करके परिक्रमा करे। पूजा करने के बाद इस व्रत को समाप्त समझे।

अक्षय नवमी के दिन ब्राह्मणों को आँवले वृक्ष के नीचे खिलाने तथा कुम्हड़ा दान देने का बड़ा पुण्य समझा जाता है। शहर में जहाँ आँवले का वृक्ष नहीं होता वहाँ दूर बगीचे में ले जाकर इस वृक्ष की छाया में ब्राह्मण भोजन कराया जाता है। जो लोग ब्राह्मणों को भोजन कराने में असमर्थ हैं वे स्वयं इस वृक्ष के नीचे बैठकर खाते हैं। ब्राह्मण भोजन के उपरान्त पके हुये कुम्हड़े को लेकर उसके अन्दर रत्न, सोना, चाँदी या रुपया रखकर ब्राह्मण को दान दिया जाता है। इस दिन दान में दिया गया कुम्हड़ा पितृ लोगों को तारता है जैसा कि नीचे के श्लोक से प्रकट है:—

कूष्माण्डं बहुबीजाढ्यं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं, पितृणां तारकाय च॥

---

२९. प्रबोधिनी एकादशी

कार्तिक शुक्ला एकादशी को प्रबोधिनी एकादशी कहते हैं। लोगों का विश्वास है कि विष्णु आषाढ़ शुक्ला एकादशी को क्षीरसागर में शयन करते हैं और ठीक चारमास के बाद कार्तिक शुक्ला एकादशी को जगाते हैं। अतः आषाढ़ शुक्ल की एकादशी 'हरिशयनी' और कार्तिक शुक्ला एकादशी 'हरिप्रबोधिनी' के नाम से प्रसिद्ध है। चूँकि इन चार मास तक विष्णु भगवान सोये रहते हैं अतः इस दीर्घ चार मास में हमारा विवाह आदि कोई भी मंगल कार्य नहीं होता। परन्तु जब कार्तिक शुक्ला एकादशी को भगवान् अपनी दीर्घ निद्रा छोड़ कर उठते हैं तब समस्त माङ्गलिक कार्यों के लिये रास्ता खुल जाता है। अतः इस तिथि को त्यौहार के रूप में मनाना स्वाभाविक ही है। इसी दिन से 'भीष्म पञ्चक' नामक एक दूसरा व्रत भी शुरू होता है जो पाँच दिनों तक अर्थात् पूर्णिमा तक चलता है। इस कारण भी इस व्रत का माहात्म्य और अधिक बढ़ गया है। देहातों में इस व्रत को देवठन कहते हैं जो 'देवोत्थान' का अपभ्रंश रूप है।

इस दिन उपवास करना चाहिये। परन्तु जो लोग किसी कारण उपवास नहीं सर सकते वे फलाहार कर सकते हैं। फलाहार के लिये इस दिन कन्द और सुथनी (एक फल विशेष) की प्रधानता रहती है।

पूजा-विधि

रात्रि के समय सोते हुये हरि को जगाने के लिये स्तोत्रपाठ, भगवत्कथा, घंटा, शंख, मृदङ्ग तथा वीणा आदि का वादन करे और विविध प्रकार प्रकार की लीला एवं नाच के द्वारा भगवान् को जगावे और साथ ही साथ इन श्लोकों के द्वारा विष्णु से जगने की प्रार्थना करे :—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द ! त्यज निद्रां जगत्पते ।
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ, जगत् सुप्तं भवेदिदम् ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वाराहदंष्ट्रोद्धृत-वसुन्धर ।
हिरण्याक्ष प्राणघातिन् त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ॥

इसके अनन्तर भगवान् के मन्दिर अथवा सिंहासन को नाना प्रकार लता पत्र,

फल-पुष्प और वन्दनवार आदि से सजावे और उनकी भलीभाँति पूजा और आरती करे। इसके बाद एक रथ में भगवान् को बिठा करके मनुष्यों के द्वारा उसे खींचे और नगर की सड़कों तथा गलियों में उसे ले चले। जो मनुष्य विष्णुयज्ञ भगवान् के इस रथ के वाहक बन कर उसको चलाते हैं उनको प्रत्येक पद पर यज्ञ के समान फल मिलता है। इस प्रकार से विष्णु भगवान् अपनी योग-निद्रा छोड़ कर प्रत्येक प्रकार की क्रिया में प्रवृत्त हो जाते हैं और प्राणीमात्र का पालन-पोषण और संरक्षण करते हैं। लिखा भी है :—

"समुत्थिते ततो विष्णौ क्रियाः सर्वा प्रवर्तयेत्"

द्वादशी के प्रातःकाल पारण करना चहिये। प्रबोधिनी की पारण में रेवती का अन्तिम तृतीयांश हो तो उसको त्याग कर भोजन करना चाहिये।

विष्णु के क्षीर शयन के विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि भगवान् ने भाद्रपद मास की शुक्ला एकादशी को महापराक्रमी शंखासुर नामक राक्षस को मारा था

कथा

और उसके बाद थकावट को दूर करने के लिये क्षीर सागर में जाकर सो गये। वे वहाँ चार मास तक सोते रहे और कार्तिक शुक्ला एकादशी को जगे। उन्होंने एक बहुत वीरता का कार्य करके शयन किया था तथा उस निद्रा से जगे थे अतः उस दिन ये दोनों दिन पवित्र माने जाने लगे और तभी से हम इस एकादशी का व्रत करने लगे।

हरि प्रबोधिनी का दिन वस्तुतः हमारी जागृति का दिन है। यह हमारी कई शताब्दियों से चली आती हुयी अलसता, निरुद्यमता तथा निरक्षरता रूपी मोह

महत्व

निद्रा को तोड़ कर जगाने वाला पुण्य पर्व है। आज हम हरिप्रबोधिनी व्रत को मनाने के अधिकारी नहीं है क्योंकि जब हम स्वयं आलस्य की गहरी नींद में सो रहे हैं, जब सारा देश अज्ञान की निद्रा में पड़ा हुआ है ऐसी दशा में हम अपने देवता को कैसे जगा सकते हैं ? अतः इस व्रत को अच्छी तरह से मनाने के लिये हमें अपनी कुम्भकर्णी निद्रा छोड़नी पड़ेगी, कर्मयोग का पाठ पढ़ना पड़ेगा और आलस्य को दूर भगाना पड़ेगा। तभी यह 'प्रबोधिनी' का व्रत सच्चे अर्थ में प्रबोधन का व्रत कहलायेगा।

---

३०. वैकुण्ठ-चतुर्दशी

कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को वैकुण्ठ-चतुर्दशी का व्रत होता है। इसके ठीक पन्द्रह दिन पहिले नरक-चतुर्दशी नामक व्रत होता है जिसमें यमराज की पूजा की जाती है। परन्तु आज के दिन भगवान् विष्णु की पूजा का विधान है। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इस व्रत को करता है वह बैकुण्ठ या स्वर्ग की प्राप्ति करता है। इसीलिये इस व्रत को वैकुण्ठ-चतुर्दशी कहते हैं। वैकुण्ठ को देने वाले इस व्रत को सभी लोगों को करना चाहिये परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि काशी-मण्डल को छोड़ कर इस व्रत का विशेष प्रचार नहीं है।

पूजा विधि

इस व्रत को करने वाले मनुष्य को उचित है कि दिन भर उपवास करे और रात्रि के समय विष्णु का पूजन करे। विष्णु की पूजा कमल के फूल तथा धूप दीप आदि से करनी चाहिये। यदि हजार कमल के फूलों से पूजा हो सके तो वह सर्वोत्तम है। इस व्रत की पूजा में रात्रि-व्यापिनी चतुर्दशी का ग्रहण करना चाहिये।

कथा

इस व्रत की कथा सनत्कुमार-संहिता में इस रूप में लिखी मिलती है। एक बार सब ऋषियों ने बालखिल्यों से इस व्रत के माहात्म्य को पूछा। तब इसका उत्तर देते हुये बालखिल्यों ने कहा कि सत्ययुग में एक बार विष्णु कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को महादेव के पूजन के लिये काशी पधारे। ब्राह्ममूहुर्त में मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर प्रातःकाल होते ही सोने के एक सहस्र कमलों को लेकर वे विश्वनाथ जी की पूजा के लिये उनके मन्दिर में गये। वहाँ जाकर उन्होंने पहिले तो गङ्गाजल से पार्वती सहित शङ्कर का अभिषेक किया और बाद स्वर्ण कमलों से शङ्कर की पूजा करने लगे। शिव जी ने विष्णु की भक्ति की परीक्षा लेने के लिये इन कमलों में से एक कमल चुरा लिया। विष्णु ने हजार कमलों से शिव की पूजा करने की प्रतिज्ञा की थी। जब वे सब फूल चढ़ा चुके तब उन्हें मालूम हुआ कि एक फूल की

कमी है। इन्होंने उस फूल की बड़ी खोज की परन्तु वह नहीं मिला। परंतु इन्होंने तो हजार फूल चढ़ाना आवश्यक ही था। अतः इन्होंने सोचा कि मेरा नाम 'पुण्डरीकाक्ष' है। अतः कमल के फूल के स्थान पर अपनी एक आँख को ही शिव पर क्यों न चढ़ा दूँ। यह विचार कर उन्होंने अपनी एक आँख निकाल कर शिव पर चढ़ा दी और इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

विष्णु की यह अगाध भक्ति देखकर शिव अत्यन्त प्रसन्न हुये और कहने लगे कि आपके समान संसार में मेरा दूसरा कोई भक्त नहीं है। अतः आपको मैं त्रैलोक्य का राज्य देता हूँ। आप इसका पालन करें। इस पर विष्णु ने पूछा कि त्रिलोकी राज्य करते समय बलवान् राक्षस जब प्रजा को सतायेंगे, तो मैं क्या करूँगा? भगवान् शिवने उसी क्षण उनको सुदर्शन चक्र दिया और कहा कि आप इसको धारण करें। इसके प्रबल प्रताप के सामने कोई राक्षस नहीं ठहर सकता। यह आज का दिन जिसमें आपने मेरा पूजन किया है—भविष्य में वैकुण्ठ चतुर्दशी के नाम से प्रसिद्ध होगा तथा जो लोग इस व्रत का पालन करेंगे वे अवश्य ही वैकुण्ठ के अधिकारी होंगे। भक्तों को पहिले आप (विष्णु) का पूजन करके ही मेरा पूजन करना चाहिये क्योंकि :—

बिना यो हरिपूजां तु, कुर्यात् रुद्रस्य चार्चनम्।
वृथा तस्य भवेत् पूजा, सत्यमेतद्वचो मम॥

वैकुण्ठ चतुर्दशी का व्रत शैव और वैष्णव पूजा में सामजंस्य उपस्थित करता है। यह हमें बतलाता है कि शिव-भक्ति विष्णु-भक्ति की विरोधिनी नहीं है बल्कि सहायक है। यह शैव और वैष्णव लोगों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न करती है। प्राचीन काल में शैव और वैष्णवों में बड़ा झगड़ा रहता था। यही कारण है कि दक्षिण में एक ही शहर में शिवकाञ्ची और विष्णु काञ्ची दो भिन्न नगरों की स्थापना करनी पड़ी। यदि उन लोगों ने इस व्रत के महत्त्व को समझा होता तो ऐसी नौबत नहीं आती। हिन्दू धर्म के दो परस्पर विरोधी दलों-शैवों और वैष्णवों—में एकता तथा सामञ्जस्य स्थापित करने की प्रवृत्ति ही इस व्रत की सबसे बड़ी विशेषता तथा महत्त्व है।

महत्त्व

३१. कार्तिकी पूर्णिमा

कार्तिक की पूर्णिमा बड़ी पवित्र तिथि समझी जाती है। इसको, 'त्रिपुरी-पूर्णिमा' भी कहते हैं जिसकी कथा आगे दी जायेगी। इस दिन गङ्गा स्नान और दीप-दान का बड़ा महत्त्व समझा जाता है। आज के दिन गङ्गा जी के किनारे पर असंख्यों नर नारी स्नान करने के लिये आते हैं और गङ्गा में डुबकी लगा कर पाप रहित हो जाते हैं। इस दिन हरिद्वार, गढ़मुक्तेश्र, राजघाट, अनूप शहर, कानपूर, प्रयाग, काशी और बलिया में गङ्ग-स्नान के लिये जनता की जो अपार भीड़ होती है उसका वर्णन करना इस लेखनी के परे है। इस दिन गङ्गा के किनारे गढ़मुक्तेश्वर, राजघाट, बलिया और सोनपूर में बड़े विशाल मेला लगते हैं जिनमें लोगों की संख्या कई लाख तक पहुँच जाती है। इन सब यात्रियों का केवल एक ही उद्देश्य रहता है—गङ्गा स्नान। अतः इस पूर्णिमा को त्रिपुरी पूर्णिमा न कहकर "गङ्गा स्नान की पूर्णिमा" कहे तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

इस दिन यदि कृत्तिका नक्षत्र हो तो यह महाकार्तिकी होती है[1]। भरणी हो तो विशेष फल देती है[2]। और यदि रोहिणी हो तो इसका फल और भी बढ़ जाता है। इसी दिन सायंकाल के समय भगवान् का मत्स्यावतार हुआ था। इस कारण इस दिन दिये गये दानादि का दस यज्ञों के समान फल होता है[3]। यदि इस

काल तथा पूजा-विधि

---

१ आग्नेयं तु यदा ऋक्षं; कार्तिक्यां भवति क्वचित्।
महती सा तिथिर्ज्ञेया, स्नानदानेषु चोत्तमा॥

२ याम्यं यदा तु भवति, ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित्।
तिथिः सापि महापुण्या, मुनिभिः परिकीर्तिता॥

३ वरान् दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत्ततः।
तस्यां दत्तं हुतं जप्तं दशयज्ञफलं स्मृतम्॥

दिन कृत्तिका का चन्द्रमा और विशाखा का सूर्य हो तो पद्मक नामक योग होता जो पुष्कर में भी दुर्लभ है[४]। इस दिन चन्द्रोदय के समय शिवा, संभूति, सन्तति आदि छः कृत्तिकाओं का पूजन करे। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि में व्रत करके वृषदान करे तो शिवपद की प्राप्ति होती है। यदि गौ, गज, रथ, अश्व और घृतादि का दान करे तो सम्पत्ति बढ़ती है। इस दिन उपवास रहकर भगवान् का स्मरण करे तो अग्निष्टोम के समान फल होकर सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। इस पूर्णिमा को सुवर्ण वा मेष दान करे तो ग्रहयोग के कष्ट नष्ट हो जाते हैं और इस पूर्णिमा से प्रारम्भ करके प्रत्येक पूर्णिमा को रात्रि में व्रत करे तो उससे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्धि होते हैं। इस दिन रातभर जागरण करने का भी विधान है।

यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि इस पूर्णिमा को त्रिपुरी-पूर्णिमा भी कहते हैं क्योंकि इसी दिन त्रिपुर नामक राक्षस को शिव जी ने मारा था। इस

कथा

राक्षस ने बड़ा उत्पात मचा रक्खा था। अतः शिव जी उसका वध करके देवताओं को भयरहित कर दिया। इसी महान् कार्य की के उपलक्ष में यह व्रत किया जाता है। एक बार महर्षियों ने इस व्रत के महत्त्व को पूछा तब बालखिल्यों ने इसका इस प्रकार उत्तर दिया—एक लाख वर्ष तक त्रिपुर ने प्रयागराज में तप किया जिसके तेज से चराचर सहित सब लोग भस्म होने लगे और देवताओं को भी बड़ा कष्ट होने लगा। तब सब देवताओं ने मिलकर अप्सराओं को इस दैत्यराज को वश में करने के लिये भेजा। परन्तु अनेक चेष्टा करने पर भी वह इनके फन्दे में नहीं आया। इस प्रकार उसकी कठिन तपस्या देखकर ब्रह्मा जी आये और उससे कहा कि वर माँगो। पहिले तो इसने अमर होने का वरदान माँगा। परन्तु ब्रह्मा के यह कहने पर कि यह वर देने में मैं असमर्थ हूँ, उसने किसी आदमी अथवा देवता के द्वारा न मरने का वर माँगा। उसके बहुत हठ करने पर ब्रह्मा ने उसे यह वर दे दिया।

---

४ विशाखासु यदा भानुः, कृत्तिकासु च चन्द्रमाः।
स योगः पद्मको नाम, पुष्करे त्वतिदुर्लभः॥ (पद्मपुराण)

ब्रह्मा के इस वरदान से त्रिपुर अत्यन्त निर्भय होगया और वह अपने अनुचरों के साथ देवताओं और मनुष्यों पर अत्याचार करने लगा। वह देवताओं को अपने द्वारपाल के रूप में रखने लगा। एक बार सूर्य का भी उसने अपमान किया परन्तु उन्होंने अपने तेज से उसके नगर को जला दिया। इस समय नारद जी त्रिपुर की नगरी में कहीं से चले आये। जब स्वागत आदि के बाद त्रिपुर ने उनसे पूछा-क्या मेरे समान कोई अन्य असुर प्रभावशाली है, तब नारद जी ने कहा कि आपके समान इस जगतीतल पर कोई भी पराक्रमी नहीं है। इस कारण त्रिपुर का अभिमान और भी बढ़ गया और वह अधिक कठोरता से अत्याचार करने लगा।

घूमते घामते एक दिन नारद जी स्वर्गलोक पहुँचे और देवताओं से कहने लगे कि आप लोग त्रिपुर के अत्याचार को क्यों सह रहे हैं? क्यों नहीं मिलकर इसके वध का उपाय सोचते? नारद के उपदेश से इन्द्र के सहित सब देवता ब्रह्मा जी के पास गये और अपने दुःखों को निवेदन किया। ब्रह्मा ने अपने साथ सबको विष्णु के यहाँ चलने की सम्मति दी। अतः सब लोग विष्णु के पास क्षीरसागर में पहुँचे। विष्णु ने कहा—आप लोगों के दुःख के दाता वस्तुतः ब्रह्मा ही हैं। अस्तु, ब्रह्मा का वरदान पाया हुआ यह दैत्यराज कैसे मरेगा, इसको बतलाइये। इसपर नारद जी ने कहा कि जो न स्त्री हो न पुरुष, न देवता हो न राक्षस तथा जिसके माँ-बाप भी न हों वही उसको मार सकता है। तब विष्णु जी बोले कि ये बातें महादेव में पायी जाती हैं अतः उनसे जाकर प्रार्थना करो। सब देवताओं ने महादेव से प्रार्थना की और उन्होंने उसका वध करना स्वीकार कर लिया।

कुटिल नारद के षड्यन्त्र से त्रिपुर ने एक बार शिव के निवास-स्थान कैलाश पर चढ़ाई कर दी। अतः शिव और त्रिपुर में भयङ्कर लड़ाई छिड़ गयी। महादेव ने धनुष लेकर राक्षसों को मारना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु जो राक्षस मरते थे वे त्रिपुर के विमान में रक्खे हुये अमृतकुण्ड में स्नान कर पुनः जीवित हो जाते थे। शिव जी बड़े संकट में पड़ गये। अतः उनकी सहायता के लिये ब्रह्मा और विष्णु आये और ये लोग गाय और बछड़े का रूप बनाकर त्रिपुरासुर के विमान में पहुँचे जहाँ अमृतकुण्ड था। इन दोनों को देखते ही सब अमृत-

रक्षक मोहित होकर बेहोश हो गये और इन दोनों ने सारे अमृत को पीकर समाप्त कर दिया।

इन दोनों ने लौट कर शिव से सारा समाचार कह सुनाया और कहा कि अब आप राक्षसों को खूब मारिये। महादेव ने बाणों की वर्षा से राक्षस-कुल का संहार कर दिया और त्रिपुरासुर के तीनों पुरों को भी भस्म कर दिया। उन्होंने रण में त्रिपुर का भी वध किया। इसके वध से देवताओं को बहुत बड़ा हर्ष हुआ और स्वर्गलोक पर फिर से इन्द्र का राज्य हो गया। त्रिपुर के वध के कारण ही शंकर 'त्रिपुरारि' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कार्तिकी पूर्णिमा का पौराणिक महत्त्व भले ही कुछ अन्य हो परन्तु इसका वर्तमान महत्त्व गंगास्नान में है। कार्तिकी पूर्णिमा को लाखों नहीं, करोड़ों नर-नारी, बाल-बच्चे गङ्गा में स्नान करते हैं और अपने पापों को नष्ट करते हैं। गढ़मुक्तेश्वर, काशी, बलिया, बक्सर तथा सोनपुर में इस दिन गङ्गास्नानार्थियों की जो असंख्य भीड़ होती है उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। गङ्गा के प्रति जनता की अगाध श्रद्धा तथा असीम भक्ति को देखकर दिल हैरान हो जाता है। जिधर सुनिये उधर ही 'गङ्गामाई की जय', 'गङ्गामाई की जय' से आकाश फटने लगता है। काशी में कार्तिक भर गङ्गास्नान होता है। अतः आज के दिन वहाँ बड़ी भीड़ होती है। कुछ लोग आकाश में दीपक भी जलाते हैं। इस प्रकार आजकल कार्तिकी पूर्णिमा का त्यौहार प्रधानतया गङ्गास्नान का त्यौहार है। गङ्गास्नान करने से भुक्ति और मुक्ति दोनों मिलती हैं। अतः गङ्गास्नान करके हम लोगों को भी इन दोनों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

लौकिक स्वरूप

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो कार्तिकी पूर्णिमा का महत्त्व बहुत ही अधिक है। यह वह पवित्र दिन है जिस दिन भगवान् शङ्कर ने त्रिपुर नामक राक्षस को मार देवताओं को उसके अत्याचार से बचाया था। यह वह दिन है जिस दिन न्याय तथा सुशासन ने अन्याय तथा अत्याचार पर विजय प्राप्त किया था। शिव ने अत्याचारी त्रिपुर का वध कर संसार का जो उपकार किया था उसी का स्मारक यह दिन है। अतः यदि संसार

महत्त्व

से अत्याचार का नाश कर न्याय की स्थापना करनी है, तो इस व्रत को करना हमारा परम पवित्र कर्तव्य है।

अगहन] ३२. कालभैरवाष्टमी [कृष्ण

मार्गशीर्ष के कृष्णपक्ष के अष्टमी को भैरवाष्टमी या काल भैरवाष्टमी कहते हैं क्योंकि इसी दिन मध्याह्न के समय भैरव जी का जन्म हुआ था। अतः इस दिन मध्याह्न-व्यापिनी तिथि लेनी चाहिये। काशी-खण्ड में इस व्रत के विषय में लिखा है कि जो मनुष्य मार्गशीर्ष की कृष्णाष्टमी को कालभैरव के समीप उनके व्रत के निमित्त उपवास करके जागरण करता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है :—

मार्गशीर्षसिताष्टम्यां, कालभैरवसन्निधौ ।
उपोष्य जागरं कुर्वन्, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

किसी किसी शास्त्र में यह भी लिखा है कि अष्टमी को प्रातःकाल गङ्गा में स्नान करके और पितृदेवों का तर्पण-श्राद्ध करके जो मनुष्य कालभैरव का दर्शन करता है वह साल भर के अनेक विघ्नों से बच जाता है। इस दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर भैरव का पूजन कर नीचे के मन्त्रों से उन्हें तीन बार अर्घ्य दे। रात्रि में जागरण करे और शिव जी की कथा सुने। ऐसा करने से वह मनुष्य सब पापों से दूर हो जाता है। अर्घ्य के मन्त्र ये हैं :—

सहस्राक्षिशिरोबाहो, सहस्रचरणाजर ।
गृहाणार्घ्यं भैरव ! इदं सपुष्पं परमेश्वर ॥
भैरवार्घ्यं गृहाणेदं, भीमरूपाव्ययानघ ।
अनेनार्घ्यप्रदानेन, तुष्टो भव शिवप्रिय ॥

भैरव जी का वाहन कुत्ता है और इनका हथियार दण्ड है। इसीलिये इनको 'दण्डपाणिः' भी कहते हैं। इसी हुलिया के कारण इनको उपर्युक्त श्लोक में 'भीमरूप' कहा गया है। भैरव जी नगर के रक्षक माने जाते हैं। अतः जो मनुष्य इनकी पूजा करता है वह इनके नगर (काशी) में आने पर सुरक्षित रहता है। काशी में भैरव जी का एक मन्दिर है जो कालभैरव के नाम से प्रसिद्ध है। भैरव जी के मन्दिर में इनके वाहन कुत्ते का भी दर्शन होता है। भक्त लोग उसे भगवान् भैरव का वाहन समझ उसे मिष्ठान्न भी खिलाते हैं। भैरव की आकृति बड़ी विकराल है। इनके व्रत का प्रचार संभवतः काशी को छोड़ कर अन्यत्र नहीं है।

अगहन] **३३. दत्तात्रेय-जयन्ती** [शुक्ल

मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के दिन दत्तात्रेय का जन्म हुआ था। स्कन्दपुराण के सह्याद्रि खण्ड में भी यही बात लिखी मिलती है कि मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन अत्रि की पत्नी सती अनुसूया ने प्रकाशमान पुत्र को उत्पन्न किया।

मृगशीर्ष-युक्ते पौर्णमास्यां यज्ञस्य वासरे।
जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम्॥

दत्तात्रेय के पिता का अत्रि और माता का नाम अनुसूया था। इनका जन्म होते ही अत्रि मुनि ने समझ लिया कि यह भगवान् का अवतार है। मेरे यहाँ इनका जन्म विष्णु के वरदान से हुआ है। अतः इनका नाम दत्तात्रेय रखना चाहिये। विष्णु के द्वारा दिये जाने से दत्त तथा अत्रि के पुत्र होने के कारण आत्रेय होने से इनका नाम दत्तात्रेय (दत्त+आत्रेय) पड़ गया। अतः ये इसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

नामकरण का कारण

एक समय ब्रह्मा की स्त्री सावित्री, विष्णु की स्त्री लक्ष्मी और शिव की स्त्री

पार्वती को अपने-अपने पातिव्रत गुणपर गर्व हो गया। नारदमुनि भला इस अभिमान को कैसे सह सकते थे। उन्होंने पार्वती के पास जाकर

कथा

कहा कि अत्रि मुनि की स्त्री अनुसूया के समान पतिव्रता स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। यह सुनकर पार्वती को ईर्ष्या हुई और उन्होंने शिव से अनुसूया को अपने व्रत से बिगाड़ने की प्रार्थना की। ब्रह्मलोक में तथा विष्णु-लोक में जाकर नारद ने सावित्री तथा लक्ष्मी से इसी तरह से अनुसूया की बड़ी प्रशंसा की। यह सुनकर इन दोनों स्त्रियों ने अपने पति ब्रह्मा और विष्णु से अनुसूया के पातिव्रत को भंग करने की प्रार्थना की। इस प्रकार तीनों देवता एक साथ ही अनुसूया की कीर्ति को नष्ट करने के लिये अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे। देवताओं ने भिक्षुक का वेश बनाकर अनुसूया से भिक्षा माँगी परन्तु जब वह भिक्षा देने लगी तब उन्होंने कहा कि हम भिक्षा न लेकर इच्छानुसार भोजन करेंगे। अनुसूया ने बहुत ही सुन्दर तथा स्वादिष्ठ भोजन बनाया और इन्हें खाने के लिये निमन्त्रित किया। परन्तु इन भिक्षुकों ने यह कह कर भोजन करने से इनकार कर दिया कि जब तक तुम हमारे सामने नग्न होकर भोजन न परोसोगी तब तक हम भोजन न करेंगे। इसे सुनकर पहिले तो अनुसूया क्रुद्ध हुई परन्तु अपने पातिव्रत-बल से देवताओं की कपट बात को जान लिया। वह अपने पति अत्रि के पास गयी और उनका पैर धोकर देवताओं के ऊपर डाल दिया जिसके प्रभाव से वे तीनों देव बच्चे बन गये। तब अनुसूया ने नग्न होकर इन्हें इच्छा भर दूध पिलाया और फिर पालने में झुलाने लगी।

अब ये तीनों देवता घर लौट कर जब नहीं आये तब उनकी स्त्रियाँ बहुत दुःखी हुई और नारद जी से उनका पता लगा कर अत्रि मुनि के आश्रम पर आ पहुँची। अनुसूया से अपने पति का समाचार पूछने पर उसने पालने की ओर ईशारा किया परन्तु तीनों की रूपाकृति एक समान होने के कारण वे उन्हें न पहचान सकीं। उनकी प्रार्थना करने पर अनुसूया ने कहा कि इन तीनों ने मेरा दूध पान किया है। अतः इन्हें हमारे बच्चे बनकर रहना पड़ेगा। इस पर तीनों देवताओं के संयुक्त अंश से एक मूर्ति बन गयी जिसके तीन सिर और छः भुजायें थीं। इस प्रकार दत्तात्रेय का जन्म हुआ। अनुसूया के द्वारा पति के चरण का

जल पुनः छिड़कने पर इन तीनों बच्चों को तीनों देवताओं का पूर्वरूप पुनः प्राप्त हो गया। दत्तात्रेय के जन्म की यही रहस्यमय कथा है।

दत्तात्रेय-जयन्ती के व्रत का बहुत कम प्रचार है। उत्तर भारत में थोड़े ही आदमी इसे जानते तथा करते हैं। परन्तु महाराष्ट्र देश में इसका बड़ा प्रचार है। श्रीपादयति, नृसिंह यति तथा नरहरि यति ने दत्तोपासना का उस देश में विशेष प्रचार किया। महाराष्ट्र देश में दत्तात्रेय के बड़े-बड़े मन्दिर बने हुये हैं तथा इनकी जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनायी जाती है। महाराष्ट्र में दत्तोपासक बहुत लोग मिलते हैं। यह प्रसिद्ध है कि दत्तात्रेय के चौबीस गुरु थे जिनसे इन्होंने समस्त विद्यायें पढ़ी थीं।

पौष]

३४. मकर-संक्रान्ति

[शुक्ल

संस्कृत भाषा में संक्रान्ति अथवा संक्रमण का अर्थ एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना होता है। अतः मकर नाम की राशि में सूर्य के प्रवेश करने को 'मकर संक्रान्ति' कहते हैं। आचार्य वराह मिहिर तथा आधुनिक

संक्रान्ति का अर्थ

पाश्चात्य विद्वानों के भी मतानुसार पृथ्वी सूर्य के चारों ओर प्रदक्षिणा करती रहती है। सूर्य को क्रमण करने का जो मार्ग है उसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं। प्रारम्भ से अन्त तक इस क्रान्तिवृत्त के बारह विभाग किये गये हैं और प्रत्येक विभाग को एक एक राशि का नाम दिया गया है। इस प्रकार हमारे यहाँ बारह राशि है—(१) मेष, (२) वृष, (३) मिथुन, (४) कर्क, (५) सिंह, (६) कन्या, (७) तुला, (८) वृश्चिक, (९) धनुः, (१०) मकर, (११) कुम्भ और (१२) मीन।

जब पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है तब उसे इस काम में पूरा एक वर्ष गता है जिसका बारहवाँ भाग एक मास होता है। जिस प्रकार पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है उसी प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है। उसकी

एक प्रदक्षिणा समाप्त होने में एक मास लगता है। इस मास को चान्द्रमास कहते हैं। जिस चान्द्रमास में सूर्य का संक्रमण क्रान्तिवृत्त के मेष भाग पर होता है उसे चैत्रमास तथा वृष के संक्रमण को वैशाख कहते है। इसी प्रकार से पौष-मास के चान्द्रमास में जो संक्रमण होता है उसे मकर संक्रान्ति कहते हैं। यों तो यह संक्रान्ति प्रतिमास में होती है परन्तु मकर और कर्क राशि का संक्रमण बड़े महत्त्व का समझा जाता है। ये दोनों संक्रमण छः छः मास के अन्तर पर होते हैं। इसमें मकर संक्रान्ति सूर्य के उत्तरायण होने को तथा कर्क संक्रान्ति दक्षिणायन होने को सूचित करती है। इन छः मास के काल को अयन कहते हैं। उत्तरायण काल में सूर्य उत्तर दिशा की ओर झुकता हुआ दिखायी पड़ता है और दक्षिणायन में दक्षिण दिशा की ओर। उत्तरायण की दशा में दिन बड़ा और रात छोटी होती है और दक्षिणायन की अवस्था में रात बड़ी और दिन छोटा होता है।

व्रतविधि मकर-संक्रान्ति के पहिले दिन एक समय ही भोजन करना चाहिये तथा मकर-संक्रान्ति के प्रातःकाल तिलों से तैलाभ्यङ्ग स्नान करना चाहिये। लिखा भी है कि :—

पूर्वेद्युरेकभुक्तेन दन्तधावन-पूर्वकम्।
संक्रान्ति-वासरे प्राप्ते तिलैः स्नानं समाचरेत्॥

इस तिथि को तिल का बड़ा महत्त्व है। इस दिन तिल ही से स्नान करे; तिल ही का उबटन लगावे; तिल ही का हवन, तिल का जल, तिल का ही भोजन तथा दान—ये छः कर्म तिल ही से होने चाहिये। क्योंकि इससे पाप नष्ट होता है :—

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती, तिलहोमी तिलोदकी!
तिलभुक्तिलदाता च, षट्तिलाः पापनाशनाः॥

चन्दन से अष्टदल का कमल बनाकर उसमें सूर्यनारायण का आवाहन करना चाहिये और यथाविधि पूजन करके सब सामान ब्राह्मण को दे देना चाहिये। इस महीने में घी और कम्बल के दान देने का बड़ा माहात्म्य लिखा है। 'शिव-रहस्य' में लिखा है कि :—

माघे मासि महादेव ! यः कुर्यात् घृत-कम्बलम् ।
स भुक्त्वा सकलान् भोगान्, अन्ते मोक्षं च विन्दति ॥

मकर-संक्रान्ति को यू० पी० के पूर्वी जिलों में 'खिचड़ी' के नाम से पुकारते हैं। इसका कारण यह है कि इस दिन लोग गंगा में स्नान कर खिचड़ी ही खाते

वर्तमान रूप

खिचड़ी ही दान देते हैं। गङ्गा में नहाना तथा खिचड़ी खाना यही आज के दिन मुख्य कार्य समझा जाता है। गङ्गा नहाने के लिये यात्रियों की बड़ी भीड़ होती है। इस दिन तिलका लड्डू तथा तिलवा खाने का भी माहात्म्य समझा जाता है। महाराष्ट्र देश में ब्राह्मणों में विवाहिता लड़कियाँ पहली संक्रान्ति को तेल, कपास, नमक आदि सौभाग्यवती स्त्रियों को अब भी देती हैं। सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपनी सहेलियों को हलदी, रोरी, तिल और गुड़ देती हैं। बंगाल प्रान्त में भी स्नान तथा तिल दान की प्रथा है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि प्रत्येक प्रान्त में दानादि की स्थानीय प्रथा विभिन्न है। गङ्गासागर में मकर-संक्रान्ति का बड़ा भारी मेला लगता है। वहाँ इस अवसर पर समुद्र में स्नान करने के लिये लगभग दो-तीन लाख आदमी एकत्रित होते हैं तथा वहाँ के जन-समुदाय की भक्ति और श्रद्धा का दृश्य देखते ही बनता है।

माघ] ३५. मौनी-अमावस्या [कृष्ण

माघ मास की अमावस्या मौनी अमावस्या के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि इस दिन मौन रहकर ही गंगा स्नान करने का विधान है। यदि मौनी अमावस्या के दिन सोमवार का दिन हो तो उसका पुण्य और भी अधिक होता है। माघ मास में त्रिवेणी स्नान का बड़ा ही माहात्म्य माना गया है। अतः बहुत से भक्त नर-नारी यहाँ माघ के पूरे महीने तक संगम के पास कुटिया बना कर वास करते हैं जिसे 'कपिल वास' करना भी कहते हैं। संभवतः यह शब्द 'कल्पवास' का अपभ्रंश है। माघ मास में कुछ लोग पूरे महीने तक व्रत करते हैं। कुछ लोग केवल

फलाहार कर रहते हैं और कुछ एकभुक्त रहते हैं। चटाई पर सोना, तेल न लगाना, किसी प्रकार का श्रृङ्गार न करना तथा संयम पूर्वक रहना—इन नियमों को पालन करना अत्यावश्यक होता है। माघ मास के स्नान का सबसे बड़ा पर्व यही मौनी अमावस्या है। इस दिन यो तों सभी शहरों में गंगास्नान की भीड़ होती है परन्तु इस दिन प्रयाग में जो प्रचण्ड जन-समुदाय इकट्ठा होता है उसका वर्णन करना लेखनी का विषय नहीं है। सन् १९३० में जो कुम्भ लगा था, उस समय इस मौनी अमावस्या के दिन लगभग ३५ लाख आदमियों ने संगम पर स्नान किया था। इसी मनुष्यों की विपुल संख्या से उस महान् जन-समूह का कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है। उस समय गंगा माई की तुमुल ध्वनि से आकाश गूँजने लगता है। उस दिन त्रिवेणी के संगम पर जिधर देखिये उधर सिर ही सिर दिखाई पड़ता है। यदि राई भी फेंक दी जाय तो वह भी नीचे नहीं गिर सकती। गंगा के प्रति लोगों की असीम श्रद्धा तथा अगाध भक्ति को देखकर हृदय गद्‌गद् हो जाता हैं। प्रयाग तो स्वयं तीर्थों का राजा है और उस पर त्रिवेणी का संगम और फिर मौनी अमावस्या का पवित्र पर्व। अतः ऐसे अवसर पर त्रिवेणी स्नान का अत्यधिक महत्त्व हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। स्वयं कालिदास ने लिखा है कि इस संगम पर जो स्नान करते हैं उन्हें सद्यः मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'समुद्रपत्न्योर्जल-सन्निपाते, पूतात्मनामत्र कृताभिषेकात्।
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयः, तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः॥

माघ] **३६. वसन्त-पञ्चमी** [शुक्ल

वसन्त-पञ्चमी का त्यौहार माघ शुक्ल पञ्चमी को मनाया जाता है। हमारे अन्य त्यौहार किसी देवता की जन्मतिथि के उपलक्ष में मनाये जाते हैं अथवा किसी दैवी घटना विशेष के कारण। परन्तु इस त्यौहार की सबसे बड़ी विशेषता

यह है कि यह एक सामाजिक त्यौहार है। इसका संबन्ध न तो किसी देवता के जन्म-दिवस से है और न अन्य किसी घटना विशेष है। यह त्यौहार वसन्तऋतु के शुभ आगमन के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। हमारे यहाँ वसन्त ऋतुराज अर्थात् सब ऋतुओं का राजा माना गया है। जिस प्रकार राजा के आगमन के अवसर पर बहुत उत्सव मनाया जाता है उसी प्रकार इस ऋतुओं के राजा के आने पर उत्सव मनाया जाना स्वाभाविक ही है।

हेमाद्रि में लिखा है कि माघ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को हरि का पूजन करना चाहिये। इस दिन पूर्वविद्धा तिथि लेनी चाहिये[1]। इस दिन तेल लगा कर स्नान करके भूषण और वस्त्रों को धारण करे तथा नित्य और नैमित्तिक कार्यों को करके श्रीविष्णु भगवान् का प्रधानतया गुलाल से तथा सामान्य रीति से गन्ध, पुष्प, दीप, धूप तथा नैवेद्य से विधिवत् पूजा करनी चाहिये[2]। इसके बाद स्त्री या पुरुष सबको पितृदेवों का तर्पण करना चाहिये और चन्दन तथा माला लगा कर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये[3]।

शास्त्रीय स्वरूप

वसन्त पञ्चमी को—जिसका दूसरा नाम श्रीपंचमी भी है सरस्वती देवी की जो वाणी की अधिष्ठात्री देवी है—भी पूजा होती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने सरस्वती के ऊपर अति प्रसन्न होकर कहा कि हे सुन्दरि! हमारे वरदान से माघ शुक्ला पञ्चमी के दिन तथा विद्यारम्भ के दिन संसार में मनुष्यगण, मनु आदि चौदह मनु, इन्द्रादिक सब देवता, बड़े बड़े मुनीन्द्र तथा मुक्ति की इच्छा करने वाले सन्त, सिद्ध लोग, नाग, गन्धर्व और किन्नर ये सब

---

१ माघे मासि सिते पक्षे, पञ्चम्यां पूजयेद्धरिम्।
पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या, वसन्तादौ तथैव च॥

२ तैलाभ्यङ्गं ततः कृत्वा, भूषणानि च धारयेत्।
नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा, गुलालेनार्चयेद्धरिम्॥

३ नारी नरो वा राजेन्द्र! सन्तर्प्य पितृदेवताः।
स्रक्चन्दनसमायुक्तो, ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः॥

लोग प्रसन्नता से प्रत्येक कल्प में आपकी यथाविधि पूजा करेंगे[1]। भगवती सरस्वती की पूजा नीचे लिखे हुये प्रकार से करनी चाहिये। वसन्त पंचमी के एक दिन पहिले नियम पूर्वक रहे। दूसरे दिन संयम पूर्वक प्रातःकाल स्नान कर सन्ध्या, तर्पण, आदि नित्यकर्म से निवृत्त होकर भक्तिपूर्वक कलश-स्थापन करे। पहिले गणेश, सूर्य, विष्णु, शंकर आदि की नैवेद्य, धूप, दीप आदि से पूजा करके बाद में अभीष्ट फल को देनेवाली सरस्वती की पूजा करे।

वसन्त पञ्चमी का त्यौहार वसन्त के आगमन के उत्सव में मनाया जाता है। आज ही के दिन पहिले-पहल गुलाल उड़ायी जाती है। सरस्वती की पूजा करके सब लोग गुलाल उड़ाते हैं और वसन्ती रंग में रँगे हुये वस्त्र को धारण करते हैं। यू० पी० के पूर्वी जिलों में आज के दिन ताल ठोका जाता है अर्थात् फाग या होली गाने का प्रारम्भ किया जाता है। आज से लेकर फागुन पूर्णिमा तक होली बड़ी मस्ती से गायी जाती है और लोग आनन्द उठाते हैं। किसान लोग अपने खेत से गेहूँ तथा जौ की नमी बालि (अन्न) को घर लाते हैं और उसमें घी तथा गुड़ मिलाकर अग्नि में हवन करते हैं। हमारे यहाँ किसी नये अन्न या फल को ग्रहण करने के पूर्व उसे किसी पुण्य तिथि को देवता या अग्नि को अर्पण कर खाते हैं। बिना देवता को चढ़ाये खाना निषिद्ध माना जाता है। अतः आज के दिन नये जौ और गेहूँ को अग्नि में हवन कर बाद में उसे व्यवहार में लाने लगते हैं। वसन्त-पञ्चमी का यही लौकिक स्वरूप है।

वर्तमान स्वरूप

वसन्त-पञ्चमी का त्यौहार हमारा सामाजिक त्यौहार (सोशल फेस्टिवल) है। यह हमारे उस आनन्दातिरेक का प्रतीक है जिसे हम ऋतुराज वसन्त के

---

१ प्रतिविश्वेषु ते पूजां महतीं ते मुदान्विताः।
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि॥
मानवाः मनवो देवाः मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः।
सन्तश्च योगिनः सिद्धाः नागाः गन्धर्वकिन्नराः॥
मद्वरेण करिष्यन्ति कल्पे कल्पे यथाविधि।

आने पर अपने हृदय में अनुभव करते हैं। यह हमारे हार्दिक उल्लास तथा उछाह की प्रतिमूर्ति है। वसन्त ऋतुओं का राजा कहलाता है, क्योंकि इस समय पतझड़ के कारण पत्तों से हीन पेड़ों में नये नये कोमल पत्ते निकल आते हैं। जंगल में पलाश के वृक्षों पर लाल लाल नये पुष्प मन को अपनी ओर बरबस खींच लेते हैं। रंग-विरंग के फूलों को देख कर हृदय हर्षित हो जाता है। कोयल की कूक कानों में अमृत उड़ेलने लगती है। आम के वृक्ष नयी मंजरी से सुशोभित हो जाते हैं। पराग पान करने के लिये फूलों पर बैठे हुये भौंरों की मीठी तथा मधुर भिनभिनाहट मन को चुरा लेती है। जोरों से बहती हुयी पुरवैया हवा धूल उड़ाती हुयी प्रकृति से मानों अठखेलियाँ करने लगती है। हरे हरे खेतों में सरसों के पीले पीले फूलों को देख हृदय फूला नहीं समाता। जिधर देखिये उधर ही नया रंग और नया समाँ दिखाई पड़ता है। लोगों के हृदय में एक विचित्र प्रकार की मस्ती छाई रहती है। इस प्रकार प्रकृति में मनोहरता लानेवाले तथा हृदय में आनन्द उपजाने वाले वसन्त के आगमन का उत्सव मनाना स्वाभाविक ही है। यही वसन्त पञ्चमी के उत्सव का महत्त्व है।

महत्त्व

माघ] **३७. माघी-पूर्णिमा** [शुक्ल

यों तो प्रत्येक मास की पूर्णिमा पवित्र समझी जाती है परन्तु कार्तिक, माघ और वैसाख मास की पूर्णिमा का विशेष महत्त्व समझा जाता है। कार्तिकी पूर्णिमा का विशेष विवरण पीछे दिया जा चुका है इसका स्नान अनेक स्थानों में होता है। वैशाखी पूर्णिमा का प्रधान मेला हरिद्वार में लगता है जहाँ सिन्ध, पंजाब तथा सीमा-प्रान्त के असंख्य यात्री स्नान करने के लिये आते हैं। माघी पूर्णिमा को स्नान तथा दान सब स्थानों में किया जाता है परन्तु इस दिन सबसे अधिक महत्त्व प्रयागराज का है। वहाँ सम्पूर्ण माघ के महीने भर तक भक्त लोग कल्प-

वास करते हैं। माघी पूर्णिमा को उनका कल्पवास समाप्त हो जाता है। अतः इस दिन प्रयाग में गंगा स्नान का बड़ा भारी मेला लगता है। जो भक्तगण कठिन तपस्या से मास-भर तक व्रत करते रहते हैं वे आज अपनी व्रत की समाप्ति पर परम प्रसन्न होकर त्रिवेणी के पावन जल में गोता लगा अपने को पाप रहित समझते हैं। इस दिन प्रयाग में बड़ी भारी भीड़ होती है। लाखों आदमी स्नान करने के लिये दूर-दूर से आते हैं। प्रयाग में पण्डों के घाटों की पहिचान के लिये झण्डे फहराते रहते हैं जिनमें तोता, पिंजड़ा, कद्दू आदि के निशान बने रहते हैं। यात्री इन झण्डों को देखकर अपने पण्डे को पहचानते हैं और उनके यहाँ जाकर स्नान करते हैं। स्नान करने के बाद यात्री लोग अक्षयवट का दर्शन करते हैं तथा बाद भारद्वाज आश्रम आदि तीर्थ स्नानों का दर्शन कर घर लौटते हैं। माघी पूर्णिमा का व्रत प्रधानतया स्नान करने का पर्व है। इस दिन प्रधान काम प्रयाग में संगम स्नान करना ही माना जाता है। परन्तु जो लोग प्रयाग नहीं जा सकते वे पास की किसी नदी में स्नान करके अपने को कृतकृत्य समझते हैं। कुछ लोग इस दिन व्रत भी रहते हैं तथा मन्दिरों में जाकर पूजा करते हैं। इस प्रकार माघी पूर्णिमा का त्यौहार समाप्त होता है।

माघ] **३८. भीष्माष्टमी** [शुक्ल

माघ शुक्ला अष्टमी को भीष्माष्टमी के नाम से पुकारते हैं। इसी दिन बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह की मृत्यु हुई थी। इसलिये उनकी स्मृति में यह त्यौहार मनाया जाता है। हेमाद्रिकार ने इस व्रत के विषय में लिखा है कि जो मनुष्य माघ मास की सिताष्टमी को भीष्मपितामह के निमित्त तिल के सहित तर्पण और श्राद्ध करता है वह शुभ सन्तति को प्राप्त करता है[1]। इस व्रत के विषय में महा-

१ माघे मासि सिताष्टम्यां सलिलं भीष्म-तर्पणम्।
श्राद्धञ्च ये नरः कुर्युः ते स्युः सन्तति-भागिनः॥

भारत में भी लिखा है कि जो मनुष्य माघ शुक्ला अष्टमी भीष्म के निमित्त जल दान करता है, उसके वर्ष भर के पापों का नाश हो जाता है[1]। पद्मपुराण में तो यहाँ तक लिखा है कि इस तिथि भीष्म के लिये शुद्ध तथा तर्पण जीवित पितावाले पुत्र को भी करना चाहिये। भीष्म के तर्पण के लिये निर्णय-सिन्धु में तीन श्लोक दिये गये हैं जिनको पढ़ कर भीष्म का तर्पण करना चाहिये। इन श्लोकों की विशेषता यह है कि इनमें भीष्म का चरित्र तथा उनके पराक्रम का भी वर्णन किया गया है। अतः उन्हें यहाँ देना अनुचित न होगा।

भीष्मः शान्तनवो वीरः, सत्यवादी जितेन्द्रियः।
अभिरद्भिरवाप्नोति, पुत्र पौत्रोचितां क्रियाम् ॥
वैयाघ्र-पद्य गोत्राय, सांस्कृत्य-प्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतत, जलं भीष्माय वर्म्मणे ॥
वसूनामवताराय, शन्तनोरात्मजाय च।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे ॥

इस प्रकार इन मन्त्रों से अर्घ्य देकर व्रत को समाप्त करे। कौरव और पाण्डव वंश के मूल पुरुष चन्द्रवंशी राजा शान्तनु थे। उनकी रानी का नाम गंगा था। भीष्म इन्हीं के गर्भ से उत्पन्न हुये थे। अतः उनका नाम 'गांगेय' पड़ गया।

कथा

एक दिन राजा शन्तनु शिकार खेलने के लिये गंगा के उस पार बड़ी दूर तक चले गये। जब वह आखेट से लौट कर गंगा के किनारे आये तो हरिदास नामक एक केवट की कन्या—जिसका नाम मत्स्यगन्धा था—ने राजा को नाव में बिठाकर गंगा पार कर दिया। महाराज शान्तनु उस कन्या के अपूर्व लावण्य को देख कर मुग्ध हो गये और उसके पिता हरिदास के पास जाकर उससे अपनी कन्या का विवाह कर देने का प्रस्ताव किया। हरिदास ने उत्तर दिया—महाराज! विवाह समान वर्ग में ही किया जाता है। कहाँ आप राजा और मैं कहाँ नीच केवट!

---

१ **शुक्लाष्टम्यान्तु माघस्य दद्याद् भीष्माय यो जलम्।**
सम्वत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

केवट की इस बात का राजा के ऊपर कुछ भी असर नहीं हुआ और उन्होंने विवाह कर देने के लिये बड़ा हठ किया। तब फिर मल्लाह ने कहा कि महाराज! आपका पड़ा पुत्र भीष्म है। यदि मैं अपनी लड़की का विवाह आपके साथ कर देता हूँ, तो भीष्म राज्याधिकारी बन जायेगा और मेरी लड़की को कष्ट होगा। अतः यदि आप यह वचन दें कि मेरी लड़की मत्स्यगन्धा से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही राज्य का अधिकारी होगा तो मैं अपनी लड़की की शादी आपसे कर दूँगा। यह बात सुनकर शान्तनु बड़े दुःखी हुये और उदासचित्त होकर महल को लौट आये। घर में पिता के चित्त को दुःखी तथा मुख को उदासीन देखकर गाङ्गेय ने इसका कारण पूछा। राजा शान्तनु ने भीष्म के हठ करने पर सारा हाल कह सुनाया। इसपर भीष्म ने कहा कि पिता जी! इसमें दुःखी होने की कौनसी बात है? इतना कह कर गाङ्गेय केवट के पास गये और उससे अपनी लड़की का विवाह अपने पिता से कर देने को कहा। केवट ने उत्तर दिया कि जबतक मेरी लड़की के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का वचन न दिया जायेगा तबतक मैं आपकी बात मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। भीष्म ने कहा जाओ मैं बचन देता हूँ कि मैं राज्य का अधिकार कभी नहीं चाहूँगा और मत्स्यगन्धा का लड़का ही युवराज होगा। इस पर कुटिल केवट ने उत्तर दिया कि यह तो ठीक है कि आप राज्य न चाहेंगे परन्तु आपके लड़के मेरी लड़की के पुत्र से राज्य शायद बलात्कार छीन लें तो? इस पर गाङ्गेय ने गङ्गा में उतर कर यह भीष्म प्रतिज्ञा की कि आज से मैं जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचारी रहूँगा और कभी भी विवाह न करूँगा। केवट को यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई और इस प्रतिज्ञा के फलस्वरूप उसने अपनी पुत्री का विवाह राजा शान्तनु से कर दिया। पिता ने पुत्र की असीम पितृभक्ति देखकर प्रसन्न होकर उसे यह वरदान दिया कि जावो, मृत्यु तुम्हारी सदा इच्छानुसारिणी रहेगी।

जब कौरवों और पाण्डवों के बीच महाभारत की लड़ाई छिड़ी, तब भीष्म ने कई कारणों से कौरवों का पक्ष लिया और उन्हीं की ओर से पाण्डवों से युद्ध करते थे। एक दिन उन्होंने कृष्ण को भी हथियार उठाने के लिये विवश करने की प्रतिज्ञा की और युद्ध में भीष्म की भयंकरता को रोकने के लिये कृष्ण को

अपना सुदर्शन चक्र उठाना ही पड़ा। भीष्म ने कई दिनों तक पाण्डवों की सेना का रण में वध किया। अन्त जब पाण्डवों ने देखा कि रण में लड़कर हम भीष्म को नहीं परास्त कर सकते तब उन्होंने शिखण्डी को आगे खड़ा कर भीष्म को मारना प्रारम्भ किया। शिखण्डी के पूर्व जन्म के नपुंसक होने के कारण भीष्म ने बाण नहीं छोड़ा परन्तु घायल होकर शर शय्या पर सोगये। इस समय सूर्य दक्षिणायन था। अतः भीष्म ने इस समय मरना उचित नहीं समझा। सूर्य के उत्तरायन होने पर भीष्म ने अपना प्राण त्यागा। उस दिन माघ शुक्ला अष्टमी थी। तभी से यह तिथि 'भीष्माष्टमी' के नाम से प्रसिद्ध है और भीष्म की मृत्यु तिथि के उपलक्ष में मनायी जाती है।

भीष्म पितामह आबाल ब्रह्मचारी थे। इन्होंने जीवन भर अपना विवाह नहीं किया और सदा नैष्ठिक ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करते रहे। यही कारण था कि इन्होंने इतना शौर्य्य, वीरता तथा पराक्रम प्राप्त किया था।

महत्त्व

तथा स्वयं मृत्यु भी इनके वश में हो गयी थी। दूसरा गुण इसकी असीम पितृभक्ति है। इन्होंने पिता के विवाह को सम्पन्न करने के लिये स्वयं आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर ली थी। आज कौन ऐसा सपूत है जो अपने पिता के लिये इतना स्वार्थ त्याग करने के लिये उद्यत है ? अतः भीष्म पितामह के चरित्र से हमें ब्रह्मचारी बनाने तथा पितृभक्त होने की शिक्षा लेनी चाहिये। तभी हम भीष्माष्टमी के व्रत को अच्छी तरह से मना सकेगें, अन्यथा नहीं।

फाल्गुन] ## ३९. महा-शिवरात्रि [कृष्ण

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को महा-शिवरात्रि का व्रत होता है। शिव जी की पूजा इस दिन बड़े समारोह के साथ होती है। यों तो प्रत्येक महीने में शिवरात्रि का व्रत होता है, परन्तु यह व्रत महा-शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध है। यही शिव

जी का सबसे बड़ा व्रत समझा जाता है। इस दिन लोग दिन-भर उपवास रहते हैं, कुछ लोग फलाहार करते हैं। विविध प्रकार के पदार्थों से शिव जी की पूजा करते हैं और रात्रि में जागरण कर शिव का ध्यान करते हुये व्रत को समाप्त करते हैं।

स्कन्दपुराण में इस व्रत के 'उद्यापन' का प्रकार निम्नलिखित प्रकार से है। इस महाशिवरात्रि के व्रत को चौदह वर्ष पर्यन्त करना चाहिये। त्रयोदशी के दिन एक समय भोजन कर चतुर्दशी को निराहार व्रत करे। पुष्प और वस्त्र से अत्यन्त भव्य एक मण्डप बना कर उसमें सर्वतोभद्र मण्डल बनाना चाहिये। उस मण्डल पर सोना, चाँदी, तांबा और मिट्टी आदि का बिना छिद्र वाला घट स्थापित करे तथा कलश पर पार्वती-सहित महादेव की मूर्ति स्थापित करे। महादेव और पार्वती की स्वर्णमयी मूर्तियों को वस्त्र पहिना कर बिल्वपत्रों से पूजे और चन्द्रमा तथा अष्टगणों की भी पूजा करे। रात्रि में शिव का ध्यान करे और कथा श्रवण कर जागरण करे। प्रातःकाल स्नान-संध्यादि से निवृत्त होकर महादेव का पूजन करना चाहिये। इस दिन शिव जी का पूजन तथा दर्शन करना नितान्त आवश्यक है।

व्रत-विधि

एक बार कैलाश पर बैठी हुई पार्वती जी ने शिव जी से पूछा—"भगवन्! इस प्रकार का कौन-सा व्रत है जिसके करने से मनुष्य आपकी प्राप्ति कर सकता है?" इस पर महादेव जी ने उत्तर दिया—फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को व्रत रह कर प्रदोषकाल में मेरा पूजन करके रात्रि को जो मनुष्य जागरण करता है, वह अनायास ही मेरे सायुज्य को प्राप्त हो जाता है। ए पार्वती! इस सम्बन्ध में एक कथा मैं तुमको सुनाता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनना।

कथा

प्रत्यन्त देश में एक बहेलिया रहता था जो प्रतिदिन जीवों की हिंसा कर अपने परिवार का पालन करता था। एक दिय समय पर रुपया न दे सकने के कारण एक साहूकार ने उसको एक शिव मन्दिर में कैद कर दिया। उस दिन चैत्र शुक्ला त्रयोदशी थी। बहेलिया ने उस दिन आगामी शिवरात्रि संबंधी कथा को सुना। शाम को साहूकार ने उस व्याधे को इस शर्त पर छोड़ दिया कि कल तुम

मेरा रुपया जरूर चुका देना। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही बहेलिया जंगल की ओर शिकार करने के लिये चल पड़ा। परन्तु दिनभर उसको कोई शिकार नहीं मिला। उस दिन दुःख के मारे कुछ भोजन भी नहीं किया। वह थका-माँदा इधर-उधर घूम रहा था कि इतने में उसने एक तालाब देखा जिसके किनारे पर एक बेल का वृक्ष था। उस बेलवृक्ष के नीचे एक शिवलिङ्ग स्थापित था। बहेलिया उस पेड़ पर चढ़ गया और अपने बैठने के लिये बनाने के लिये बेल के पत्तों को नीचे गिराने लगा। इस प्रकार उन बेल के पत्तों से शिवलिंग ढँक गया। व्याध दिन-भर भूखा रहने के कारण एक प्रकार से शिवरात्रि का व्रत कर चुका था, और पत्तों के गिराने से शिव जी के ऊपर बेलपत्र भी चढ़ गये। इस प्रकार व्रत के कारण उसकी अन्तरात्मा अत्यन्त पवित्र हो गयी थी।

व्याधा को पेड़ पर बैठे-बैठे एक पहर बीत चुका था। उसने देखा कि एक सुन्दर हरिण जो गर्भवती होने के कारण बड़ी धीमी चाल से चल रही है उधर ही आ रही है। उसने बाण उठाकर उसे मारना चाहा। इसपर हरिन ने उत्तर दिया कि ए व्याधा! यह क्या अनर्थ कर रहे हो? व्याधा ने कहा कि यह तो मेरा नित्य का ही कर्म है। इसपर हिरण बोली—मैं गर्भवती हूँ। मेरे प्रसूति का समय भी अब करीब आ गया है। अतः मैं बच्चा पैदा करके उसे उसके पिता को सौंप कर तुम्हारे पास अवश्य लौट आऊँगी। इस समय कृपा करके तुम मुझे छोड़ दो। व्याधे का मन व्रत के कारण अत्यन्त पवित्र तथा निर्मल हो गया था। उसे दया आ गयी और उसने उस गर्भवती हिरन को छोड़ दिया। आधी रात हो जाने पर एक दूसरी हरिणी आयी जो अत्यन्त सुन्दरी थी। व्याध ने फिर उसे मारने के लिये धनुष-बाण उठा लिया। हरिणी ने गिड़गिड़ाते हुये कहा कि "आप मुझे क्यों मारते हैं। मैं निवृत्त वाली हूँ। यदि पति का संयोग होने के पूर्व मैं मार डाली गयी तो मेरी यह अभिलाषा सदा बनी रहेगी और यह बात आपके लिये कुछ अच्छी न होगी। मैं अपनी अभिलाषा की निवृत्ति करके आपके पास अवश्य लौटूँगी तब आप मुझे मारियेगा। व्याध के निर्दय चित्त में भी हरिणी की करुणाजनक बात सुनकर दया आ गयी और उसने उसे भी छोड़ दिया।

दूसरी हरिणी के चले जाने पर व्याध शिव शिव करता हुआ उसी पेड़ पर बैठा रहा। कभी कभी वह पत्ते तोड़ कर गिराता था जो अनायास शिवलिङ्ग पर चढ़ते जाते थे। इतने में तीसरा पहर भी आ गया। व्याधे ने देखा कि एक हरिणी तीन चार बच्चों के साथ स्वच्छन्द विहार करती हुई चली आ रही है। उसने इसे मारना चाहा। परन्तु हरिणी ने कहा कि ए व्याध ! जब तुमने हमसे पहिले के दो जीवों को नहीं मारा तो हमें मार कर क्यों पाप के भागी बन रहे हो। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। मेरे मरने से ये बच्चे भी अनाथ हो जायेंगे। यदि आप दया कर मुझे छोड़ दें तो मैं इन बच्चों को इनके पिता के पास पहुँचा कर शीघ्र ही कल लौट आऊँगी। शिव के व्रत के कारण व्याध का हृदय अत्यन्त दयालु हो गया अतः उसने हरिणी को बिना मारे छोड़ दिया।

प्रातःकाल से कुछ पूर्व एक मोटा ताजा हिरन उस तालाब के पास आ पहुँचा। व्याध ने उसे भी मारने की तैयारी की परन्तु उस मृग ने कहा कि ए व्याध ! यदि तुमने मेरी तीन हरिणियों को मार डाला है तो लो मुझे भी मार डालो। परन्तु यदि नहीं मारा है तो मुझे भी छोड़ दो क्योंकि वे मुझे ढूँढ़ती होंगी और मेरे न मिलने पर बहुत दुःखी होंगी। यदि आप मुझको मार डालेंगे तो वे जिस उद्देश्य से आप से शपथ करके गयी हैं वह नहीं पूरा हो सकेगा और आपने जिस उद्देश्य से उनको छोड़ा है वह न पूरा होगा। शुद्ध चित्त वाले व्याधे ने हरिण को भी छोड़ दिया। प्रातःकाल होने पर बहेलिया पेड़ से उतरा। उतरने में कुछ पत्ते और भी शिव जी पर गिरे जिससे प्रसन्न होकर शिव जी ने उसके हृदय को इतना निर्मल और कोमल बना दिया कि वह अपने पूर्व हिंसा के कार्यों से अत्यन्त विरक्त हो गया और पश्चात्ताप-पूर्वक कहने लगा कि यदि वे हिरन अब आयेंगे तो मैं उन्हें कदापि नहीं मारूँगा।

जब हिरन घर पहुँच कर हरिणियों से मिला तब उसने अपनी बात को दृढ़ रखने के लिये व्याधे के पास चलने के लिये सबसे कहा। हरिनियाँ तैयार होकर व्याधे के पास गयीं परन्तु शुद्धात्मा व्याधे ने उन्हें मारने से इनकार कर दिया। इस प्रकार अहिंसा की चरमसीमा पर पहुँचे हुये व्याधे को देखकर मैंने (शिव जी ने) व्याध के लिये एक विमान भेजकर अपने लोक में बुला लिया।

अतः जो लोग मेरी सायुज्यता चाहते हैं उन्हें मेरे इस व्रत को अवश्य करना चाहिये ।

महा-शिवरात्रि भगवान् शंकर का परम पवित्र दिन है। यह अपनी अन्तरात्मा को पवित्र करने का शुभ तथा पावन पर्व है। भगवान् शंकर का नाम 'कामारि' है क्योंकि इन्होंने कामदेव को जला दिया था। अतः हमें उनके व्रत से जितेन्द्रिय बनने की शिक्षा लेनी चाहिये। शिव ने विश्व के कल्याण के लिये अपनी जान की पर्वाह न कर विष का पान कर लिया था। अतः परोपकार के लिये स्वार्थ त्याग करने का पाठ हमें पढ़ना चाहिये। भगवान् 'आशुतोष' हैं। शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। ये कल्याण के दाता हैं। अतः यह व्रत करने से अभीष्ट की पूर्ति शीघ्र ही हो जाती है। काशी के विश्वनाथ जी के मन्दिर में इस दिन अपार भीड़ होती है। भक्तजन लाखों की संख्या में जाकर भगवान् का दर्शन करते हैं और अपने को कृतकृत्य मानते हैं।

महत्त्व

फाल्गुन]

४०. होली

[शुक्ल

फाल्गुनी पूर्णिमा को होली का त्यौहार मनाया जाता है। इसे होलिकोत्सव भी कहते हैं। होली हमारा सब से बड़ा और सबसे प्रसिद्ध त्यौहार है। यह अत्यन्त लोक-प्रिय त्यौहार है क्योंकि इसे स्त्री, पुरुष, बालक, जवान तथा बूढ़े सभी बड़े उत्साह से मनाते हैं। इसके समान आनन्द और प्रसन्नता देने वाला हमारा कोई दूसरा व्रत नहीं। यह हमारे सामाजिक त्यौहारों में सर्वश्रेष्ठ तथा सर्व-प्रसिद्ध है। आज के दिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सभी बड़े उत्साह से इसे मनाते हुए आनन्दित दिखाई देते हैं। इस त्यौहार में न तो कोई वर्णभेद है और न जाति भेद। यह आम जनता का त्यौहार है, यदि यह हम कहें तो कुछ

अत्युक्ति न होगी। जो उत्साह और आनन्द ईसाई लोग बड़े दिन के त्यौहार में मनाते हैं उससे कहीं कई गुना अधिक उत्सव हम लोग करते हैं तथा आनन्द लूटते हैं। संयोग से यह त्यौहार एक ऐसे मस्ताने महीने में पड़ता है जो स्वयं आनन्द देने वाला है फिर इसके होने से सोने में सुगन्ध आ गई है। कहने का सारांश यह है कि होली हमारा सर्व-श्रेष्ठ, सर्व-प्रसिद्ध तथा सर्वप्रिय सामाजिक त्यौहार है।

काल निर्णय

इस दिन होलिका दहन भी किया जाता है। अतः होलिका के दहन में पूर्वविद्धा प्रदोष व्यापिनी पूर्णिमा लेनी चाहिये[1]। यदि वह दो दिन प्रदोष व्यापिनी हो तो दूसरी लेनी चाहिये[2]। यदि प्रदोष में भद्रा हो तो उसके मुख की घड़ी त्याग कर प्रदोष में होलिका दहन करना चाहिये[3]। भद्रा में होली को प्रज्वलित नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे राष्ट्र में विद्रोह होता है और नगर में भी शान्ति नहीं रहती[4]।

प्रतिपदा, चतुर्दशी, भद्रा और दिन में होली जलाना सर्वथा त्याज्य है। परन्तु दुर्दैव-वश यदि जला दी जाय तो वहाँ के राज्य, नगर और मनुष्य अद्‌भुत उत्पातों से एक ही वर्ष में नष्ट हो जाते हैं[5]। यदि पहले दिन प्रदोष के समय भद्रा हो और दूसरे दिन सूर्यास्त के पहिले पूर्णिमा समाप्त होती हो तो भद्रा के समाप्त होने की प्रतीक्षा करके सूर्योदय होने के पहिले होलिका दहन करना

---

१ प्रदोष-व्यापिनी ग्राह्या पूर्णिमा फाल्गुनी सदा (नारद)

२ दिनद्वये प्रदोषश्चेत् पूर्णादाहः परेऽहनि (स्मृतिसार)

३ तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे।

४ भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै।
नगरस्य न चेष्टा स्यात्तस्मात्तां परिवर्जयेत ॥
(पुराण—समुच्चय)

५ प्रतिपद्भूत-भद्रासु यार्चिता होलिका दिवा।
संवत्सरं तु तद्राष्ट्रं पुरं दहति साद्भुतम् ॥ (चन्द्रप्रकाश)

चाहिये[1]। इसलिये होलिका जलाने के पूर्व किसी विद्वान् पण्डित से उसका उचित समय पूछ कर ही होलिका जलानी चाहिये।

होलिका-दहन के समय काष्ठ का संग्रह करके तथा पुआल और उपले आदि को लाकर उसमें जलाना चाहिये[2]। इस दिन व्रती को चाहिये कि वह प्रातः स्नानादि के अनन्तर संकल्प करके काठ के टुकड़ों से तलवार बनवा कर बच्चों को खेलने को दे। वे निःशंक होकर खेल-कूद करें और हँसें। इसके बाद होलिका के दहन-स्थान को जल के प्रोक्षण से शुद्ध करके उसमें उत्तम काष्ठ, सूखे उपले और सूखे काँटे आदि भली भाँति स्थापित करे। पश्चात् सायंकाल के समय सम्पूर्ण पुरवासियों के साथ होली के समीप जाकर शुभासन पर पूर्व या उत्तर मुख होकर बैठे। इसके बाद होलिका पूजन का संकल्प करके पूर्णिमा तिथि के होने पर किसी अछूत अथवा सूतिका के घर से बालकों द्वारा अग्नि मँगवा कर होली को जलाये[3]। आग के प्रचण्ड रूप धारण करने पर नीचे के मन्त्र से तीन वार उसकी प्रदक्षिणा करे, अर्घ्य दे और होलीदण्ड या शास्त्रीय यज्ञ स्तम्भ को शीतल जल से अभिषिक्त करके उसे एकान्त में रख दे। मंत्र यह है :—

पूजा-विधि

असृक्पाभयसंत्रस्तैः, कृता त्वं होलि बालिशैः।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि, भूते भूतिप्रदा भव॥

इसके बाद गेहूँ चने और जौ की बाल को होली की ज्वाला में सेंके तथा यज्ञ-सिद्ध नवान्न तथा होली का भस्म लेकर घर लौट आवे। वहाँ घरके

---

१ दिनार्धात् परतो या स्यात् फाल्गुनी पूर्णिमा यदि।
रात्रौ भद्रावसाने तु होलिकां तत्र पूजयेत्॥ (भविष्योत्तर)

२ फाल्गुने पौर्णिमायान्तु होलिका-पूजनं स्मृतम्।
संचयं सर्वकाष्ठानां पलालानाञ्च कारयेत्॥ (नारदीयपुराण)

३ चाण्डाल सूतिका गेहाच्छिशु-हरित-वह्निना।
प्राप्तायां पूर्णिमायान्तु कुर्यात्तत्काष्ठ-दीपनम्॥ (स्मृतिकौस्तुभ)

आँगन में गोबर से चौका लगा कर अन्नादि का स्थापन करे। इस अवसर पर काष्ठ की तलवारों को स्पर्श करके बालक लोग आनन्द मनावें। ऐसा करने से व्यापक सुख और शान्ति होती है।

इस पूर्णिमा को वैष्णव लोग दोलोत्सव करते हैं। ब्रह्म पुराण में लिखा है कि फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन हिंडोले में झूलते हुये श्री गोविन्द पुरुषोत्तम का जो मनुष्य चित्त को एकाग्र करके दर्शन करता है वह निश्चय ही वैकुण्ठ में जाता है। यह दोलोत्सव होली जलाने के बाद होता है। यदि पूर्णिमा की पिछली रात में होली प्रज्वलित हो तो यह उत्सव प्रतिपदा को होता है और इसी दिन अबीर या गुलाल उड़ाया जाता है।

कथा

होलिका की कथा भविष्य-पुराण में मिलती है। नारद जी ने युधिष्ठिर से होली की जो कथा कही थी उसका सारांश दिया जाता है:—

नारद जी ने कहा कि हे राजन्। फाल्गुन की पूर्णिमा को सब मनुष्यों के लिये अभय दान देना चाहिये जिससे समस्त प्रजा निडर होकर हँसे और क्रीडा करे। डण्डे और लाठी को लेकर बालक नगर के बाहर जाकर होली के लिये लकड़ी और उपलों का संग्रह करें। उस होलिका में विधिवत् हवन किया जाय। वह पापात्मा राक्षसी किलकिलाहट और मन्त्रोच्चारण से नष्ट हो जाती है।

हे राजन्! दूसरे पुराणों में ऐसी भी कथा है कि ढुंढला नामक राक्षसी ने शिव और पार्वती की तपस्या करके यह वरदान पाया था कि जिस किसी बालक को वह पाती जाय उसे खाती जाय परन्तु वरदान देते समय शिव जी ने यह युक्ति रख दी थी कि जो बालक बीभत्स आचरण एवं राक्षसी वृत्ति में निर्लज्जता-पूर्वक फिरते पायें जायेंगे, उनको तू न खा सकेगी। अतः उस राक्षसी से बचने के लिये बालक नाना प्रकार के बीभत्स और निर्लज्ज स्वाङ्ग करते हैं तथा अण्ट सण्ट गन्दी गालियाँ बकते हैं।"

कुछ लोगों का यह कहना है कि होलिका-दहन का यह उत्सव होलिका नामक नामक स्त्री की स्मृति में होता है जो हिरण्यकश्यपु की बहन थी। हिरण्यकश्यपु का लड़का प्रह्लाद बड़ा ही भगवान् का भक्त था। पिता ने उसे ऐसा करने से

मना किया परन्तु उसने कुछ नहीं सुना। इस पर हिरण्यकश्यपु ने उसे पहाड़ से गिराया, हाथी के पैरों तले कुचलवाया। परन्तु प्रह्लाद को तनिक भी चोट नहीं आयी। उसकी बहन का नाम होलिका था। उसे यह वरदान प्राप्त था कि वह आग में नहीं जल सकती। हिरण्कश्यपु ने इसी होलिका को यह आज्ञा दी कि तुम प्रह्लाद को गोदी में लेकर आग में बैठ जा जिससे प्रह्लाद जलकर नष्ट हो जाय। होलिका ने ऐसा ही किया परन्तु भगवान् की दया से राक्षसी होलिका ही जल गयी और प्रह्लाद हँसते हुये आग से बाहर निकल आये। इस समाचार को सुनकर प्रजा लोगों ने बड़ा उत्सव मनाया। इसी राक्षसी होलिका की स्मृति में यह होलिकोत्सव मनाया जाता है। भक्त प्रह्लाद अक्षत आग से निकल गये थे, अतः उसकी प्रसन्नता में अपने आनन्द का प्रदर्शन किया जाता है।

यू० पी० के पूर्वी जिलों में 'होलिका-दहन' को 'संवत् जलाना' भी कहते चूँकि आज से १५ दिन के बाद चैत्र शुक्ल प्रतिपद् से नया वर्ष प्रारम्भ होता है और पुराना वर्ष या संवत् समाप्त हो जाता है अतः नये वर्ष के आगमन तथा पुराने की समाप्ति के कारण ही इसे संवत् जलाना कहते हैं तथा उसे जला कर अपने हृदय के आनन्द को होली खेलकर प्रकट करते हैं।

—०—

स्त्रियों के व्रत

४१. गनगौर

चैत्र] [शुक्ल

यह त्यौहार चैत्र शुक्ल तृतीया को होता है। सत्य में तो यह हिन्दू स्त्री-मात्र का त्यौहार है। देश-भेद से पूजन और उत्सव की विधि में बहुत कुछ अन्तर पड़ जाता है। यह त्यौहार सौभाग्यवती स्त्रियों का है। यह कहा जाता है कि इसी चैत्र शुक्ल तीज को शिव जी ने पार्वती को सौभाग्य वर दिया था। पुनः पार्वती ने भी इसी दिन सम्पूर्ण स्त्रियों को 'सौभाग्य-वर' दिया था। संयुक्त प्रदेश में इसी दिन गणगौरी का जन्म मनाते हैं। गणगौरी का जन्म अर्थात् मंगला-गौरी का जन्म इसी दिन हुआ था। इसीलिये स्त्रियाँ बहुत ही ज्यादा उत्सव मनाती हैं।

सौभाग्यवती स्त्रियाँ मध्याह्न तक व्रत रखती हैं। पूजन के समय बालू का गौर बना करके उनको सौभाग्य सम्बन्धी सब चीज़ें—सिंदूर, चूड़ी, महावर (आलता) और नवीन वस्त्र—चढ़ाती हैं। चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप-दीप, नैवेद्यादि से विधिवत् पूजन करने के बाद सुहाग की सामग्री अर्पण की जाती है। तब भोग लगाया जाता है। भोग के बाद कथा कही जाती है। कथा पूरी हो जाने के बाद व्रत रखने वाली सौभाग्यवती स्त्रियाँ गौर का चढ़ा हुआ सिन्दूर अपनी-अपनी माँग में लगाती हैं। तब केवल एक बार भोजन करके व्रत को समाप्त करती हैं। इस व्रत का प्रसाद मरदों को नहीं दिया जाता। केवल स्त्रियों में ही बाँट दिया जाता है।

एक बार शिव और नारद जी देश पर्यटन के लिये बाहर निकले। उनके संग पार्वती भी हो गईं। एक दिन वे सब एक गाँव में पहुँचे। उस दिन चैत्र शुक्ल तीज थी। गाँव के स्त्रियों को पता चल गया कि साक्षात् शिव और पार्वती पधारे हैं। गाँव की सब स्त्रियाँ उनके लिये रुचिकर भोजन बनाने लगीं। परन्तु नीच कुल की स्त्रियाँ शीघ्र ही आकर उनकी पूजा करने लगीं। पार्वती प्रसन्न होकर उनके ऊपर सम्पूर्ण सुहाग-रस (सौभाग्य का टीका लगाने की हल्दी) छिड़क दी। वे अटल सौभाग्य पाकर चली गईं।

कथा

कुछ देर के बाद उच्च कुल की स्त्रियाँ सुन्दर भोजन लेकर आयीं। शिव जी पार्वती के ऊपर बहुत असंतुष्ट हुये क्योंकि नीच जाति के स्त्रियों को सम्पूर्ण सुहाग-रस दिया गया था। पार्वती ने कहा कि मैं अपने शरीर के खून का बूँद दे डालूँगी। जब वे स्त्रियाँ पूजन कर लौटने लगीं तब पार्वती ने अपने अँगुली को काट कर खून का बूँद सबों के ऊपर दे डाला। मतलब यह है कि जिसके ऊपर जितने छींटे पड़े उसने वैसा ही सुहाग पाया।

इसके बाद पार्वती शिवजी से आज्ञा माँग कर पूजन करने को नदी के किनारे चली गई। वहाँ पर विधिवत् पूजन किया। बालू की शिव की प्रतिमा बनाकर बालू का ही प्रसाद चढ़ाया। पार्वती बहुत देर के बाद लौटी। इस पर शिव जी ने पूछा—कहाँ गई थी ? पार्वती ने कहा—वहीं पर मेरे भाई आदि मैके के आ गये थे। भेंट होने के कारण देर हो गई। शिव जी की इच्छा हुई कि मैं भी उन लोगों से भेंट कर आऊँ। इस पर वे नारद के साथ चल पड़े। पार्वती बड़े फेर में पड़ गयीं लेकिन शिव जी की असीम कृपा से नदी के किनारे महल आदि बन गये। शिव जी ने संतुष्ट होकर भोजन किया। लौटते समय शिव जी की माला छूट गई। यह बात बहुत दूर लौट आने पर मालूम हुयी। शिव जी ने नारद को माला ले आने को भेजा। नारद जी गये। वहाँ तो महल का नाम-निशान नहीं था। घोर बन में उन्हें घूमना पड़ा। एक पेड़ के ऊपर शिव जी की माला टँगी थी। नारद जी माला ले आकर शिवजी के पास आये और सब कथा सुना दी।

शिव जी ने हँसते हुये नारद से कहा कि यह पार्वती की लीला है। गौरी पार्वती ने कहा कि हे प्रभु, यह सब आपकी कृपा का फल है। तब नारद जी ने शिव और पार्वती को प्रणाम करके कहा कि माता! आप पतिव्रताओं में श्रेष्ठ हैं। यह सब आपके पातिव्रत का प्रभाव है। जब संसार की स्त्रियाँ आपके नाम से सौभाग्य प्राप्त कर पातिव्रत में लीन हो संसार की संपूर्ण सिद्धियाँ पा सकती हैं तब आपके लिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

ज्येष्ठ] **४२. वटसावित्री** [कृष्ण

यह व्रत ज्येष्ठ अमावस्या को होता है। इसका उद्देश्य सौभाग्य का वर्धन तथा पुत्र पौत्र आदि की प्राप्ति है। सावित्री और सत्यवान की कथा तो प्रसिद्ध ही है कि किस प्रकार सावित्री ने अपनी तपस्या के बल पर अपने पतिदेव को यमराज के पाश से मुक्त किया। सावित्री भारतीय पतिव्रताओं की शिरोमणि हैं। उन्हीं की पुण्यस्मृति में यह व्रत किया जाता है। इसका विधान यह है कि स्नान कर वट के समीप में जाकर आचमन लेकर संकल्प करे। संकल्प का मुख्य उद्देश्य आजन्म सौभाग्य है। वट के मूल में जल दान दे तथा वहीं सावित्री और सत्यवान की मट्टी की अथवा सोने की मूर्ति बना कर पूजा करे। पूजा में विशेषतः हल्दी, गन्ध, पुष्प, अक्षत, ताम्बूल, कुंकुम तथा सिन्दूर चढ़ानी चाहिये। रक्षा से वट को १०८ बार लपेटना चाहिये। व्रत करनेवाली स्त्री को तीन रात तक उपवास करने का विधान है। इस प्रकार यह व्रत ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी को आरम्भ होता है और अमावस्या को समाप्त होता है। कथा सुनने के बाद प्रतिमा ब्राह्मण को दे देनी चाहिये।

---

४३. कजरी

कजरी का शुद्ध संस्कृत रूप कजली है। यह त्यौहार भाद्र कृष्ण तृतीया को मनाया जाता है। यह स्त्रियों का बड़ा मुख्य त्यौहार है। इसी दिन स्त्रियाँ नया वस्त्र पहनती हैं और अपने शरीर को आभूषणों के सुसज्जित करती हैं। अपने लावण्य को प्रदर्शित करने के लिये कोई भी उपाय नहीं छोड़तीं। इसके उपलक्ष्य में हाथ तथा पैर में स्त्रियाँ मेंहदी लगाती हैं। इस दिन स्त्रियाँ रात को जागरण करती हैं और रातभर कजली गाती हैं। इस त्यौहार के दिन स्त्रियाँ खूब सुन्दर-सुन्दर और चित्ताकर्षक कजलियाँ गाती हैं। इस प्रकार से यह त्यौहार सानन्द समाप्त होता है।

संयुक्त प्रान्त में इसका बहुत ज्यादा प्रचार है। विशेषतः बनारस और मिर्जापूर इसका केन्द्र है। बनारस में सावन और भादों दोनों महीने में कजली गाई जाती है। विशेषकर भादों में कजरी गाने की विशेष चाल है। पुरुष भी कजली गाया करते हैं। सब से प्रसिद्ध कजली मिर्जापूर की होती है। इस विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है—"दशमी रामनगर की भारी, कजली मिर्जापुर सरनाम ॥" इस दिन वहाँ स्त्री और पुरुष दोनों इस उत्सव में आनन्द लेते हैं। इस महीने में दूर-दूर से लोग कजली सुनने के लिये मिर्जापूर जाते हैं। इस प्रकार यह उत्सव स्त्री और पुरुष दोनों के चित्त के मनोविनोद के लिये हैं। इस तरह स्त्रियाँ आनन्द प्राप्त करती हैं। काशी से पश्चिम की चाल यह है कि विवाहित स्त्रियाँ अपने मायके बुला ली जाती हैं। किसी बड़े पेड़ के नीचे झूला डाल दिया जाता है और उसी पर एकउम्रवाली युवती स्त्रियाँ सुन्दर कजलियाँ गाती हुई पेंग मार कर झूला करती हैं। यह दृश्य बहुत ही सुहावना होता है।

४४. बहुला व्रत

यह व्रत भाद्र कृष्ण चतुर्थी को किया जाता है। उस दिन कन्यायें तथा युवतियाँ दिन भर व्रत रहती हैं। सायङ्काल नदी या जलाशय में स्नान कर बहुला उसके बच्चे तथा सिंह की बालू की प्रतिमा बनाकर इनका फल-पुष्प आदि से विधिवत् पूजन करती हैं। तदनन्तर बहुला की कथा सुनती हैं। जौ के सत्तू तथा गुड़ शाम को खाती हैं। यह व्रत सन्तान का दाता और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है।

इसकी कथा संक्षेप में यों है—किसी ब्राह्मण देवता के घर बहुला नामक गाय रहती थी। उसे एक बच्चा था जिसे वह बहुत प्यार करती थी। बछड़े का माता के लिये प्रेम हमेशा रहता ही है। परन्तु इस बछड़े का प्रेम अपनी माता की तरफ से विलक्षण कोटि का था।

कथा

माता के आने में यदि थोड़ी भी देर हो जाती तो बछड़ा बेचैन हो उठता। इधर उधर दौड़ने लगता और अपना पगहा तुड़ाने लगता। एक दिन की घटना है कि बहुला घने जङ्गल के भीतर घास के लोभ से चली गई। सहेलियों का साथ छूट गया। रास्ता भूल गई। इसी समय उसे एक भयानक बाघ से मुलाकात हुई। बाघ अपनी भूख बुझाने के लिये उसे खाने के लिये दौड़ा। बहुला ने उसे बहुत समझाया कि घर पर उसका एकलौता पुत्र उसके लौटने की घड़ियाँ गिन रहा होगा। भगवान् के नाम पर मुझे छोड़ दो। मेरा मारना दो प्राणियों की हिंसा है। बाघ को इन करुण वचनों को सुनकर भी दया न आई। तब बहुला ने बच्चे को समझाने के लिये अवकाश माँगा कि मैं बच्चे को किसी प्रकार संतोष दिलाकर लौटूँगी तब आप मुझे मारना और खा जाना। पर बाघ को इन वचनों पर विश्वास ही न जमा। अन्त में बहुला के दृढ़ प्रतिज्ञा करने पर सिंह ने उसे घर जाने की अनुमति दी।

बहुला घर लौटी। बच्चे को प्रेम से दूध पिलाया और रोते हुये कहने लगी—बच्चा, आज हमारे जीवन का अंतिम दिन है। मैं अपनी प्रतिज्ञा के

अनुसार बाघ के पास जा रही हूँ। तुम अपने संगी-साथियों से मिल-जुल कर रहना और उसने दिन की घटना सुनायी। बछड़ा रोने-पीटने लगा परन्तु वह दृढ़-प्रतिज्ञ थी। वह बाघ के पास पहुँची। वह उसे देखकर आश्चर्य से चकित रहा। बहुला के इस सत्य-भाषण तथा प्रतिज्ञा-निर्वाह से प्रसन्न होकर उसने उसे छोड़ दिया। बहुला सानन्द घर लौट आयी और अपने प्यारे पुत्र के साथ आनंद से रहने लगी।

इस व्रत का उद्देश्य यह है कि हमें सत्यप्रतिज्ञ होना चाहिये। जिस किसी प्रतिज्ञा को कर डालना ठीक नहीं। प्रतिज्ञा सोच-समझ कर ही करे। पर जो प्रतिज्ञा करे, उसे पूर्णशक्ति भर निबाहने का यत्न करे। दूसरी शिक्षा है अनाथों के पालन की। जो बिना किसी घर बार के हैं उनकी रक्षा का भार प्रत्येक मनुष्य के ऊपर होना चाहिये। इसी की शिक्षा इस व्रत से मिलती है :—

मातॄणां सुतवात्सल्यं सत्यस्य महिमा परः।
अनाथरक्षणं धर्मो यत्र सर्वमुदाहृतम् ॥
याः पालयन्त्यनाथांश्च परपुत्रान् स्वपुत्रवत्।
ता धन्यास्ताः कृतार्थाश्च ताः स्त्रियो लोकमातरः ॥

इस व्रत से हमें माता की पुत्र के ऊपर असीम प्रेम का पता चलता है। सत्य की महिमा प्रकट होती है। अनाथ का रक्षण करना धर्म है। इसकी शिक्षा हमें इस बहुला व्रत से मिलती है। जो स्त्रियाँ अनाथों को अपने पुत्र के समान पालन करती हैं वे धन्य हैं तथा उनके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। वे स्त्रियाँ ही लोक की मातायें कही जा सकती हैं। इस कथानक में सत्य की बड़ी ही ऊँची महिमा कही गई है। जब पशु ही अपनी की गई प्रतिज्ञा से नहीं टलता तथा सत्य पर पूर्ण आग्रह दिखलाता है, तब इस व्रत के करने वाली स्त्रियों के लिये सत्य का पालन करना क्या धर्म नहीं है? इस शिक्षा को ध्यान में रखते हुये हिन्दू नारियों को इस व्रत का अनुष्ठान विधिवत करना चाहिये।

४५. हरितालिकाव्रत

यह व्रत स्त्रियों के लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह परम-सौभाग्य पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्ति का देनेवाला होता है। इसकी तिथि है भाद्रपद शुक्ल तृतीया। तृतीया में पड़ने के कारण साधारणतया स्त्रियाँ उसे 'तीज' कहती हैं। हरितालिका शब्द का स्वारस्य इस व्रत की उत्पत्ति से है। सखियों ने पार्वती के लिये शंकर सरीखे वर पाने के लिये जंगल में ले गई थीं। सखियों (आली) के द्वारा हरण किये जाने के कारण इस व्रत का नाम हरितालिका (हृत + आलिका) पड़ा[1]। भगवती पार्वती का पूजन ही व्रत का प्रधान अंग है। पार्वती भारतीय कन्याओं के लिये आदर्शभूत हैं। उन्होंने अपनी कठिन तपस्या के बल पर गाढ़ प्रेम, सदा स्थायी ऐश्वर्य तथा मृत्युजय पति पाया था। इस व्रत से स्त्रियाँ गौरी के आदर्श को अपना आदर्श मानती हैं और पति के कल्याण के लिये अपना सर्वस्व निछावर करने के लिये तैयार होती हैं।

इसकी विधि यह है कि उस दिन घर को साफ कर गन्ध धूप से सुसज्जित करे। नया वस्त्र धारण करना इस व्रत में नितान्त आवश्यक माना जाता है।

पूजा-विधि

घर में मण्डप सजाकर बालू के बने शिव और पार्वती की मूर्ति की स्थापना करे। उसका भलीभाँति पूजन करे। चन्दन, अक्षत, पुष्प आदि से पूजन कर सुन्दर मिष्ठान्न भोग में लगावे। रातभर सुन्दर गीत—शिव पार्वती के विषय में—गाकर जागरण करे। कथा सुनने के उपरान्त ब्राह्मण को दान देवे और सौभाग्यवती स्त्रियों को सौभाग्य की चीजें (रोली, सिंदूर, चूड़ी आदि) देवे। स्त्री को नियमपूर्वक उपवास ही रहना चाहिये। शक्ति रहने पर उपवास पूरे तौर पर करें नहीं तो फल-मूल खाने में किसी प्रकार का हर्ज नहीं है। इसी व्रत के विधान से भगवती पार्वती ने शंकर को पति रूप में प्राप्त किया था। यह कथा नितान्त प्रसिद्ध है।

---

१ अलिभिर्हरिता यस्मात् तस्मात् सा हरितालिका।

४६. जीवितपुत्रिका

जीवितपुत्रिका 'जिउतिया' के नाम से विशेष प्रसिद्ध है। यह व्रत आश्विन कृष्ण अष्टमी को किया जाता है। इस व्रत को वे स्त्रियाँ रखती हैं जिनके पुत्र हैं। यह व्रत पुत्र के दीर्घायु होने के लिये किया जाता है। इसका विधान यह है कि स्त्रियाँ प्रातःकाल गङ्गा में स्नान करती हैं अथवा किसी तालाब में ही स्नान करती हैं। सन्ध्या के समय स्त्रियाँ सूत की बनी 'जिउतिया' पहन कर कथा सुनती हैं। बहुत सी स्त्रियाँ सोने की जिउतिया बनाकर पहनती हैं। इस दिन वे बिना जल के रहती हैं और दूसरे दिन प्रातःकाल भोजन करती हैं। इसके करने से लड़के दीर्घायु होते हैं। यदि कोई लड़का बड़े भारी खतरे से बच जाता है तो लोग कहते हैं कि इसकी माँ ने खर (खड़ी) जिउतिया की थी। स्त्रियाँ जिउतिया की बहुत सी कथायें कह कर उसे पहनती हैं। यहाँ इसमें से एक कथा दी जा रही है :—

चील और सियारिन की कथा

एक चील थी और एक सियारिन। औरतों को जिउतिया का व्रत करते देखकर चील ने कहा कि मैं जिउतिया व्रत करूँगी। तो सियारिन ने भी कहा कि मैं भी जिउतिया भूखूँगी। चील ने कहा कि तुम सर्वदा मांस, हड्डी खाने वाली हो। यह व्रत तुमसे नहीं होगा क्योंकि इस व्रत में जल भी नहीं पीया जाता। लेकिन सियारिन ने उसकी बात न मानी। दोनो चील और सियारिन जिउतिया का व्रत रहीं। दिन भर तो बीत गया लेकिन जब रात आई तब सियारिन को बड़ी भूख प्यास लगी। भूख प्यास के मारे छट पटाने लगी। वह धीरे से जंगल में जाकर हाड़ मास बटोर लाई और धीरे धोरे उसे खाने लगी। खाते समय हड्डी की कड़कड़ आवाज हुई। चील ने कहा कि सियारिन यह क्या कर रही हो? सियारिन ने कहा—यह कुछ नहीं कर रही हूँ। भूख के मारे पंजर की हड्डिया बोल रही हैं। इस पर चील ने कहा—तुम हड्डी खा रही हो और झूठ भी बोल रही हो। मैंने तुमसे पहले कहा था कि यह व्रत तुमसे नहीं होगा। सियारिन लजाकर चुप हो गई।

इसके बाद सियारिन के जितने बच्चे हुये वे सब मरते गये और चील के जितने बच्चे हुए वे सब जीये।

यही चील और सियारिन की कथा है।

पुराणों में जीवत-पुत्रिका व्रत के साथ जीमूतवाहन की कथा सम्बद्ध है। कथानक इस प्रकार है—गन्धर्वों के राजकुमार का नाम जीमूतवाहन था। यह स्वभाव से ही बड़े ज्ञानी, विवेकी दयालु, तथा पर-दुःख-कातर थे। वृद्धा अवस्था में पिता ने इनके ऊपर राज्य का भार छोड़ जंगल में वानप्रस्थ जीवन बिताना आरम्भ किया। परन्तु राजकुमार के माता पिता के सेवा में ही परम सौख्य की प्राप्ति होती थी। उन्हें राज्य भारभूत प्रतीत होता, सिंहासन पर बैठ कर अभिमान तथा दर्प की मूर्ति बन कर अपने ही भाइयों के ऊपर शासन करना उन्हें ढोंग जान पड़ता। उन्होंने राज्य छोड़ दिया और पिता की सेवा के लिये मलय पर्वत पर जा पहुँचे। जहाँ उनके पिता का आनन्द-प्रद आश्रम था। यहीं पर उनका मलयवती नामक राजकन्या से विवाह हुआ। परन्तु गार्हस्थ्य जीवन का सुख उनके भाग्य में बदा न था।

जीमूत वाहन की कथा

एक दिन विचित्र घटना यह हुई। घूमते हुए जीमूतवाहन समुद्र के किनारे बहुत दूर तक निकल गये। वहीं उन्हें करुण स्वर से विलाप करती हुई एक वृद्धा मिली। उन्होंने पूछा—"माता अकेले तुम क्यों विलाप कर रही हो? वृद्धा ने कहा—मुझे एक ही पुत्र है। मैं नाग वंश की स्त्री हूँ। जब गरुड़ नागों का व्यर्थ ही उत्पीडन किया करते थे तब नागों ने उनसे प्रतिज्ञा की कि उनके भोजन के लिये एक नाग प्रतिदिन आया करेगा और उसे ही खा कर वे अपनी क्षुधा शान्त किया करें। गरुड़ ने यह बात मान ली। आज मेरे पुत्र शंखचूड के बलि का दिन है। इसीलिये मैं रो रही हूँ। जीमूतवाहन ने कहा—डरो मत। मैं तुम्हारे पुत्र के प्राणों की रक्षा करूँगा। इतना कह कर वह आगे बढ़ा और और शंखचूड़ के हाथ से लेकर लाल कपड़े से अपने शरीर को ढक दिया और मुँह नीचे किये बध-शिला पर जा बैठा। तब गरुड़ बड़े वेग से आये। जीमूत-वाहन को चंगुल में रखकर पहाड़ के शिखर पर जा बैठे और लगे उसे नोच

नोच कर खाने। परन्तु जब उसके मुख से न किसी प्रकार की आह सुनाई पड़ी और आँखों न आँसू का बूँद दिखलाई पड़ा तब तो गरुड़ को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह खाने से रुक गया। जीमूतवाहन ने उनसे खाने की प्रार्थना की। गरुड़ ने इस महापुरुष का परिचय चाहा और वर देने की इच्छा प्रकट की। जीमूतवाहन ने सच्चा किस्सा कह सुनाया और यही व्रत माँगा कि आज से निर्भय होकर नाग लोग जलाशयों में विचरण किया करें। गरुड़ने ने यह बात मान ली। नागों को खाना तो छोड़ ही दिया। साथ अमृत की वर्षा कर मरे हुये नागों को जिला दिया। कथा का सारस्य यह है कि जो स्त्री इस व्रत को करती हैं और इस कथा का श्रवण करती हैं उसका पुत्र विपत्तियों में पड़ कर भी बच जाता है।

आश्विन] **४७. मातृ-नवमी** [कृष्ण

यह व्रत आश्विन कृष्ण पक्ष के नवमी को होता है। साधारणतया 'महालया' में जिस तिथि को जिसकी माता मरी रहती है उस दिन उसका श्राद्ध किया जाता है। लेकिन इस तिथि का नाम ही मातृ नवमी है क्योंकि इसी दिन प्रत्येक मनुष्य अपनी माता की पूजा करता है। इस मास में माता के श्राद्ध के लिये तो खास खास तिथियाँ हैं लेकिन इस दिन प्रत्येक जन अपनी मरी हुई माता का श्राद्ध करते हैं। इसका विधान ऐसा है कि प्रातःकाल स्नान कर माता का विधिवत् श्राद्ध करे। मध्याह्न में ब्राह्मण को बुलावें और संकल्प करके उसे भर पेट भोजन करावे और अन्तः में चलने के समय ताम्बूल तथा दक्षिणा दे देवें। इस प्रकार से ब्राह्मण के खा जाने पर उसे खाना चाहिए। इस तरह से यह व्रत समाप्त होता है।

---

४८. करवा चौथ

यह व्रत कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को किया जाता है। इस व्रत के करने का अधिकार केवल स्त्रियों को है। व्रत रखने वाली स्त्री को चाहिये कि वह प्रातः काल नदी में अथवा तालाब में स्नान करे। तदुपरान्त व्रत का संकल्प करे। इसमें चन्द्रमा की मूर्ति बनाकर इनकी पूजा षोडशोपचार से करे। पूजन के पश्चात् ब्राह्मणों को पुवों से भरे हुए ताम्बें या मिट्टी के बर्तनों का दान करे। चन्द्रमा के उदय हो जाने पर अर्घ देकर कहानियाँ सुने। उसके बाद व्रत करने वाली स्त्री पारण करे।

कथा

एक राजा और रानी थे। राजा दूसरों के लड़कों को देखकर घृणा करता था। उन्हें कोई लड़का ही नहीं हुआ। दूसरे बालकों की चुल्ली करते देखकर राजारानी का दिल विमुख हो जाता था। इस प्रकार से बहुत समय बीत गया। राजा का चौथापन आ गया। अब पुत्र के बिना वंश का चलना मुश्किल हो गया। वे दोनों सूर्य भगवान् की पूजा करने लगे। उनकी पूजा पर देवता प्रसन्न हुए और इनकी सिफारिश ब्रह्मा से की। ब्रह्मा ने कहा कि इन्हें पुत्र लिखा ही नहीं है। अच्छा, देवलोक के किसी बालक से चलो पूछें अगर कोई राजा रानी का लड़का बनना चाहता है। कोई भी जाने के लिये तैयार नहीं हुआ। लेकिन अन्त में बहुत कुछ कहने पर एक देव-बालक जाने को तैयार हुआ। ब्रह्मा ने कहा यदि तुम्हें वे आदर की दृष्टि से न देखगें तो मैं तुम्हें बुला लूँगा। लड़के ने पूछा—आप कब और क्या बात देखकर बुला लेगें ?

भगवान् ने कहा — तुम अपना बाल-हठ दिखाना-सावन; भादों में धूल खेलने के लिये माँगना, बे-मौसिम चूसने के लिये ऊँख माँगना। रानी जब सोलहो सिंगार किये रहे उस समय कीचड़ में लोट जाना। यदि उस समय रानी तुम्हारा मन न रक्खेगी तो मैं तुम्हें बुला लूँगा।

सूर्य भगवान् सब बातें सपने में राजा रानी को बता दिया। रानी को गर्भ रहा लड़का हुआ। जो लड़का माँगता था उसे रानी मँगवा देती थी। कार्तिक महीने की तीज आई। उस दिन लड़का योंही मचल गया और गोद से उतर कीचड़ में लोटने लगा। इस दिन रानी खूब कीमती पोशाक पहनी थी। बालक को कीचड़ में लोटते ही पुनः गोद में ले लिया और अपने कपड़े का विचार नहीं किया।

भगवान् ने देखा कि राजारानी दोनों लड़के को खूब मानते हैं तब उनसे लड़का नहीं छीना और उसी बालक से उनका वंश चला। कैसी भगवान् की दया है।

कार्तिक] **४९. अहोई व्रत** [कृष्ण

यह व्रत कार्तिक कृष्ण अष्टमी को होता है। इस दिन लड़के की माँ व्रत रहती है। दिन भर उपवास रहा जाता है और सन्ध्या को सब प्रकार की कच्ची रसोई बनाई जाती है। सन्ध्या में दीवार पर आठ कोष्टक की एक पुतली बनाई जाती है। उसी के पास साही के बच्चों की और साही की आकृति बनाई जाती है। जमीन पर गोबर से लीप कर कलश की स्थापना की जाती है। इसके बाद विधिवत् कलश-पूजन के बाद अष्टमी का (जो दीवाल पर लिखी हुई रहती है) पूजन होता है। तब दूध भात का 'भोगन लगाया जाता है और कथा सुनी जाती है। इसे अहोई-आठें का व्रत कहते हैं। गुजरात में अहोई व्रत मनाया जाता है। उस दिन चन्द्रमा का उदय अष्टमी तिथि में होता है।

किसी स्त्री के सात लड़के थे। कार्तिक के महीने में दीपावली के पूर्व सभी स्त्रियाँ अपने घर को लीपने के लिये बाहर से मिट्टी लातीं। उक्त स्त्री गाँव के

कथा

बाहर से लिपने के लिये मिट्टी लाने को गई। दैवात् उसी स्थान पर साही की माँद थी। कुदाली साही के बच्चे को

लग गई जिससे वह तुरन्त मर गया। इस मृतक बच्चे को देखकर उसे बड़ी दया आई, लेकिन वह कुछ नहीं कर सकती थी। मिट्टी लेकर घर चली आई।

उसका बड़ा लड़का मर गया। थोड़े ही दिन के बाद उसका दूसरा लड़का भी मर गया। इस प्रकार से साल भर के भीतर ही उसके सातो लड़के मर गये। उसने कोई गलती न की थी केवल उसके द्वारा साही के बच्चे मर गये थे। गाँव की स्त्रियों ने इसकी बात सुनी और कहा कि तुम्हारा आधा पाप कहने से कट गये और आधा पाप कटने के लिये अष्टमी का व्रत करो। उस दिन साही तथा उसके बच्चे का चित्र बनाकर पूजा करना। ईश्वर चाहेगा तो तुम्हारे बच्चे पुनः जीवित हो जायेंगे।

कार्तिक कृष्ण अष्टमी आई। उस दिन व्रत रह कर उस स्त्री ने साही और उसके बच्चे का चित्र बनाया। इसी तरह से बराबर वह पूजन करने लगी। भगवान् की कृपासे उसके सातो बच्चे जीवित हो गये।

तभी से इस व्रत की उत्पत्ति हुई।

कार्तिक] ५०. भ्रातृ-द्वितीया [शुक्ल

भ्रातृद्वितीया 'भैया दूज' के नाम से लोकप्रिय है। यह व्रत कार्तिक शुक्ल द्वितीया को होता है। इस व्रत का प्रधान ध्येय भाई और बहन का मेल है। कहीं भी भाई रहता है, उस दिन बहन के घर जाकर भोजन करता है। इस प्रकार बहन अपने भाई की पूजा करती है। भाई और बहन में स्वाभाविक प्रेम होना चाहिये। इसको प्रदर्शित करने के लिये कम-से-कम सालभर में एक दिन रक्खा गया है :—

स्नेहेन भगिनीहस्ताद् भोक्तव्यं पुष्टिवर्धनम्।
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विशेषतः॥

इस दिन गोधन कूटा जाता है। गोबर से एक आदमी की शकल बनाकर

उसकी छाती पर ईंट रक्खी जाती है और उसी को स्त्रियाँ मूसल से कूटती हैं। कूटने से पहिले कहानियाँ कही जाती हैं। घर-घर स्त्रियाँ गूम, भटकटैया और चना लेकर सरापती हैं यानी अपने घर भर के सब लोगों के नाम पर कहती हैं—'इनको खाँव, इनको चबावँ।' घर ही नहीं टोल-पड़ोस के सब लोगों को इस तरह 'खाती चबाती' हैं। फिर अपने जीभ को भटकटैया के काँटे से दागती हैं। यहीं सब चीजें लावा और मिठाई गोधन बाबा के स्थान पर भेजी जाती हैं। वहाँ गोधन को कूटते समय स्त्रियाँ कहती हैं कि 'जिनको-जिनको खाया-चबाया है उन सबको 'हनुमन्ते का बल' हो। इसके बाद स्त्रियाँ वहाँ से चरणामृत लेकर घर जाती हैं और उसे पीती हैं। यह सब पूजन मध्याह्न के पूर्व ही हो जाता हैं। इसके बाद बहन अपने भाई को मिठाई खिलाने के लिये जाती है। सर्वप्रथम बहन उसे चना खिलाती है और फिर विविध प्रकार के भोजन। भाई मिठाई खाकर रुपैया देता है। इस प्रकार से यह व्रत समाप्त होता है।

इस व्रत का प्रधान लक्ष्य भाई और बहन में प्रेम दृढ़ करना है। कहा जाता है कि इसी दिन जमुना अपने भ्राता यम से मिलने के लिये गई थी। यमराज ने जमुना से कहा कि बहन मैं आज तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। जो तुम्हारे मन में हो वह वर माँगो। उसे मैं देने के लिये तैयार हूँ। जमुना ने कहा—भैया! यदि तुम सचमुच मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो मुझे यही वरदान चाहिए कि आज के दिन मुझ में स्नान करने वाला व्यक्ति यमलोक का मुख न देखे। यमराज ने इसे स्वीकार कर लिया। इसीलिये आज के दिन मथुरा में विश्राम घाट पर जमुना में स्नान करने का माहात्म्य है। लाखों की संख्या में आस्तिक हिंदूजन जमुना में आज के दिन स्नान करने के लिये जुटते हैं। शायद इससे बड़ा दूसरा मेला जमुना के किनारे नहीं लगता।

५१. सूर्यषष्ठी व्रत

यह व्रत कार्तिक शुक्ल षष्ठी को होता है। यह विशेष कर 'डाला छठ' के नाम से प्रसिद्ध है। क्योंकि सब वस्तुएँ एक डाल में पूजा के लिये रखी जाती हैं। यह व्रत पुत्र के हो जाने पर किया जाता है। इस व्रत का प्रधान उद्देश्य पुत्र की दीर्घायु होना है। यह व्रत बड़ा ही कठिन होता है क्योंकि इसमें तीन दिन उपवास के लग जाते हैं। इस व्रत को करनेवाली स्त्रियों को पञ्चमी के ही दिन एक बार बिना नमक का भोजन करना पड़ता है। दूसरे दिन षष्ठी को स्त्रियाँ बिना जल के दिन भर रहती हैं। उस दिन संध्या को अर्घ्य दिया जाता है। विविध प्रकार के फल, नारियल, केला इत्यादि तथा मिठाई पूजा के लिये ले जाती हैं, घाट पर सब स्त्रियाँ गीत गाती हैं और फिर कुछ रात के बीतने पर घर लौटती हैं। उस दिन रातभर जागरण कर गीत गाती हैं। प्रातःकाल फिर वे घाट पर आती हैं और नदी या तालाब में स्नान कर गीत गाने लगती हैं। गीत का विषय सूर्य का शीघ्र उगना ही रहता है। वे प्रार्थना करती हैं कि संसार को प्रकाश देने वाले सूर्य हमारे अर्घ्य को ग्रहण कीजिये। सूर्य भगवान् के उदय होने पर दूध से अर्घ्य दिया जाता है। तब यह व्रत समाप्त होता है। इस व्रत में संध्या के दिन षष्ठी में अर्घ्य दिया जाता है और प्रातःकाल सप्तमी में। इस कारण इस व्रत में कई दिन तक बिना जल का रह जाना पड़ता है। इसलिये यह बड़ा कठिन व्रत है। इसके करने से भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं और व्रतियों को आशीर्वाद देते हैं जिससे उनकी मनोकामना पूरी हो।

इस व्रत के विषय में अनेक कथायें सुनी जाती हैं। कोई वृद्धा स्त्री थी। उसके जीवन का सहायक कोई न था। इस व्रत के दिन उसने भगवान् सूर्य से प्रार्थना की कि उसे पुत्र उत्पन्न हो। उसके जन्म होते ही इस व्रत का विधिवत् पालन करेगी। सूर्य की कृपा से पुत्र हुआ। माता प्रतिज्ञा पर प्रतिज्ञा करती गई और टालती गई। चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत आदि सब संस्कार सानन्द

समाप्त हो गये, परन्तु षष्ठी के व्रत का करने का अवसर नहीं आया। लड़के का विवाह होने को गया। जब वर-वधू घर की ओर आ रहे थे तो वे जंगल में टिके। वधू ने देखा कि पालकी में ही वर मृतप्राय होकर लेटा हुआ है। वह जोर से रोने लगी। इसपर वहाँ एक वृद्धा स्त्री आई और कहने लगी कि मैं ही छठी माता हूँ। तुम्हारी सास सदा मुझे फुसलाती आती है। मंगल पर मंगल होते हैं, पर वह मेरी पूजा भूल जाती है। मैं तुम्हारे पति को इस समय जिला देती हूँ, पर घर जाते ही सास का गला पकड़ कर पूछना कि छठी को फुसलाने वाली तुम्हीं हो ? वर जी उठा। वधू घर पहुँची। स्वागत की तैयारियाँ हुईं। वधू ने ज्योंही घर में पैर डाला, त्योंही सास को पकड़ कर पूछने लगी कि छठी को फुसलाने वाली तुम्हीं हो ? सास को सब पुरानी बातें याद आ गईं और उसने तुरन्त अपनी गलती स्वीकार की। छठी माता के कोप और अनुकम्पा का पता चला। उसने बड़े प्रेम से यह व्रत किया। तब से उसके घर में कोई भी विपत्ति नहीं आई।

माघ] ५२. अचला सप्तमी [शुक्ल

यह व्रत माघ शुक्ल सप्तमी को होता है। इसको सौर सप्तमी भी कहते हैं। इस तिथि को प्रातःकाल प्रयाग में स्नान करने का विशेष माहात्म्य है। उस दिन प्रयाग में त्रिवेणी के तट पर स्नान करने से बड़ा भारी फल प्राप्त होता है। इसके करने से सात प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। इसकी विधि यह है कि षष्ठी के दिन एक बार भोजन करे और सूर्य भगवान् का पूजन विधिवत् करे। सप्तमी के दिन प्रातःकाल गंगा नदी या तालाब में स्नान कर दीप-दान पूर्वक मस्तक पर दीप धारण करके सूर्य की स्तुति करे। फिर ब्राह्मण को दान कर भोजन करे। अचला सप्तमी के व्रत से सम्बन्ध रखने वाली एक कथा का वर्णन नीचे दिया जाता है :—

एक समय की बात है जब युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से पूछा कि कलियुग में स्त्री किस व्रत के करने से अच्छे पुत्रवाली हो सकती है ? इस पर श्रीकृष्ण ने कहा कि प्राचीनकाल में इन्दुमती नामक वेश्या महाराजा समर के पास रहती थी। उसने वसिष्ठ मुनि के पास जाकर पूछा कि "आज तक मैंने कोई भी अच्छा काम नहीं किया। अतः मुझे सद्गति नहीं मिल सकती। मुझे नरक ही भोगना पड़ेगा। अतः कोई व्रत बतलावें।" इस पर वसिष्ठ ने कहा—"स्त्रियों को मुक्ति, सौभाग्य और सौंदर्य देने वाला अचला सप्तमी व्रत है। इससे बढ़ कर और कोई व्रत नहीं है। इसके करने से तुम्हारे सब पाप दूर हो जायेंगे और सद्गति मिल जायेगी।" इन्दुमती ने इस व्रत को किया और इस शरीर को छोड़ कर स्वर्ग में चली गई और अप्सराओं की नायिका बन गई।

फाल्गुन] **५३. जानकी जयन्ती** [कृष्ण

५३. जानकी जयन्ती

यह व्रत फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को मनाया जाता है। इस व्रत के नाम से ही जाना जाता है कि यह व्रत जानकी जी का है। इस दिन भगवान् रामचन्द्रकी स्त्री—जानकी जी—की जयन्ती मनाई जाती है। जनकपुर में इस दिन बड़ा भारी मेला लगता है। भारतीय ललनाओं में जनक-नन्दिनी जानकी के समान पतिव्रता स्त्री का होना नितान्त दुर्लभ है। अशोक वाटिका में रहते समय जब राक्षसियों ने रावण को पतिवरण करने के लिये बड़ा आग्रह किया तब जानकी ने जो बात कही उसकी समता कहाँ मिल सकती है :—

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्॥

मैं अपने बायें पैर से भी इस राक्षस को नहीं छूऊँगी। उससे प्रेम करने की कथा तो अलग ही रही। ऐसा वचन साध्वी सीता को छोड़ कर कितनी स्त्रियाँ

कर सकती हैं ? जानकी के जीवन से पतिव्रता धर्म का पुनीत उपदेश स्त्रियों को ग्रहण करना चाहिये। इस जयन्ती का यही उद्देश है।

एकादशी

एकादशी का व्रत हमारे सब व्रतों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पछिले पृष्ठों में विशिष्ट एकादशियों का वर्णन किया जा चुका है। यहाँ कुछ विशेष रूप से एकादशी की उत्पत्ति, विधि तथा माहात्म्य का वर्णन किया जा रहा है।

एकादशी की उत्पत्ति

पद्म पुराण में एकादशकी उत्पत्ति का बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है। सत्ययुग में 'मुर' नामक दानव बड़ा ही अद्भुत, अत्यन्त रौद्र तथा देवताओं के लिये नितान्त भयङ्कर था। उसने सब देवताओं को परास्त कर दिया था। देवताओं के राजा इन्द्र भगवान् शङ्कर के पास इस दानव के दमन के लिये गये। शङ्कर के कहने पर देवता लोग भगवान् कृष्ण के पास पधारे और इस नवीन उत्पाती दानव के उत्पीडन का वर्णन किया। इन्द्र ने कहा—देवेश्वर! पूर्वकाल में ब्रह्मा जी के वंश में 'तालजङ्घ' नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ था, जो अत्यन्त-भयङ्कर था। उसका पुत्र 'मुर' दानव के नाम से विख्यात हुआ। वह भी अत्यन्त उत्कट, महा पराक्रमी और देवताओं के लिये भयङ्कर है। चन्द्रावती नाम से प्रसिद्ध एक नगरी है उसी में स्थान बनाकर वह निवास करता है। उस दैत्य ने समस्त-देवताओं को परास्त करके स्वर्ग लोक से बाहर कर दिया है। उसने एक दूसरे ही इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासन पर बैठाया है। अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु तथा वरुण भी उसने दूसरे ही बनाये हैं। जनार्दन! मैं सच्ची बात बता रहा हूँ। उसने सब कोई दूसरे ही कर लिये हैं। देवताओं को तो उसने प्रत्येक स्थान से वञ्चित कर दिया है। [इस पर भगवान् जनार्दन देवताओं का उत्पीडन सुनकर बड़े ही क्रुद्ध हुए और स्वयं चन्द्रावती पुरी में पधारे। वहाँ उनके तीव्र बाणों के

प्रहार से सब दानव भयभीत होकर इधर उधर भाग गये। और उनका अधिपति मुर भी विष्णु के डर से छिप गया। तब विष्णु भगवान् बदरिकाश्रम को चले गये। वहाँ सिंहावती नामक गुफा थी जो बारह योजन लम्बी थी। उसमें एक ही दरवाजा था और उसी में भगवान् विष्णु सो रहे। दानवमुर भगवान् को मार डालने के उद्योग में लगा था। वह उनके पीछे लगा रहा। वहाँ पहुँचकर उसने भी उसी गुहा में प्रवेश किया। वहाँ भगवान् को सोते देख उसे बड़ा हर्ष हुआ। उसने सोचा यह दानवों को भय देने वाला देवता है। अतः निःसन्देह इसे मार डालूँगा। दानव के इस प्रकार विचार करते ही भगवान् विष्णु के शरीर से एक कन्या प्रकट हुई। जो बड़ी ही रूपवती तथा दिव्य अस्त्रशास्त्रों से युक्त थी। वह भगवान् के तेज के अंश से उत्पन्न हुई थी। उसका बल और पराक्रम महान् था। दानवराज मुर ने उस कन्या को देखा। कन्या ने युद्ध का विचार करके दानव के साथ युद्ध के लिये याचना की। युद्ध छिड़ गया। कन्या सब प्रकार की युद्ध-कला में निपुण थी। वह मुर नामक महान् असुर उसके हुङ्कारमात्र से राख का ढेर हो गया। दानव के मारे जाने पर भगवान् जाग उठे। उन्होंने दानव को धरती पर पड़ा देख पूछा—मेरा यह शत्रु अत्यन्त उग्र और भयंकर था किसने इसका वध किया ?

इस पर वह कन्या बोली—आपके ही प्रसाद से मैंने इस महान् दैत्य का वध किया है। भगवान् ने कहा—कल्याणी ! तुम्हारे इस कर्म से जगत् के प्राणी, स्वर्ग के देवता आनन्दित हुये हैं। तुम्हारे मन में जैसी रुचि हो उसी के अनुसार मुझसे वर माँगो। वह कन्या साक्षात् एकादशी थी। उसने कहा—प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं आपकी कृपा से सब तीर्थों में प्रधान, समस्त विघ्नों का नाश करनेवाली तथा सब प्रकार की सिद्धि देने वाली हूँ। जो लोग आप में भक्ति रखते हुए मेरे दिन को उपवास करें उन्हें सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो। विष्णु ने इस वर को स्वीकार कर लिया और तब से एकादशी का व्रत जगत् में चल निकला।

दोनों पक्षों की एकादशी समभाव से माननीय है। इसमें शुक्ल और कृष्ण का भेद किसी प्रकार का न करना चाहिये। यदि उदयकाल में थोड़ी सी एकादशी

हो, मध्य में पूरी द्वादशी हो और अन्त में किञ्चिद् त्रयोदशी हो तो वह त्रिस्पृशा एकादशी कहलाती है। यह भगवान् को बहुत ही प्रिय है। यदि एक त्रिस्पृशा एकादशी को उपवास कर लिया जाय तो एक हजार एकादशी व्रतों के करने का फल उसे प्राप्त होता है। इसकी विधि इस प्रकार है—अपने वैभव के अनुसार भगवान् विष्णु की प्रतिमा सोने का बनाये और जल से भरे सुन्दर कलश के ऊपर उसकी स्थापना करे। तदनन्तर भगवान् दामोदर को स्नान, चन्दन, वस्त्र और पुष्प, तुलसीदल आदि से पूजन करे। यज्ञोपवीत तथा नूतन वस्त्र चढ़ावे। मनोहर नैवेद्य तथा फलों का भोग अर्पण करे। विधिवत् मंत्रों से उनके प्रत्येक अङ्ग की पूजा करे ! तदनन्तर जल-युक्त शंख के ऊपर सुन्दर नारियल रखकर उसमें रक्षा सूत्र लपेटे और हाथ जोड़ कर भगवान् से नरक के दुःख तथा मानसिक चिन्ता के दूर करने की प्रार्थना करे :—

तेन देवेश मां रक्ष गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते।
सदा भक्तिर्ममैवास्तु दामोदर तवोपरि ॥

एकादशी तिथि के निर्णय के लिये एक बात ध्यान में रखनी चाहिये। हिन्दू गृहस्थ दो प्रकार के हैं—एक स्मार्त और दूसरे वैष्णव। स्मार्त से अभिप्राय उनसे हैं जो पञ्चदेवता के उपासक हैं। वैष्णव लोग केवल विष्णु के ही उपासक होते हैं। एकादशी यदि दशमी से विद्ध हो तो वह गृहस्थों के लिये ही उपयुक्त है। वैष्णव लोग उसमें व्रत आदि का विधान नहीं करते। उनके लिये परवर्तिनी तिथि से युक्त होने पर ही उसमें उपवास का विधान है। पहले दिन यदि दिन में और रात में भी एकादशी हो और दूसरे दिन प्रातःकाल एक दण्ड भी एकादशी रहे तो पहली तिथि का परित्याग करके दूसरे दिन की द्वादशी-युक्त एकादशी को उपवास रखना चाहिये। वैष्णवों के लिये यही नियम है। कुछ लोगों का यह ख्याल है कि कृष्ण पक्ष की एकादशी का व्रत गृहस्थों के लिये नहीं है, परन्तु यह ठीक नहीं जान पड़ता। पद्म पुराण का स्पष्ट कथन है कि 'एकादश्यॉं न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि' अर्थात् दोनों पक्षों की एकादशी को भोजन न करना चाहिये।

एकादशी को प्रातःकाल दन्तधावन करके सकल्प करना चाहिये कि हे पुण्डरीकाक्ष ! हे अच्युत ! मैं एकादशी को निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मुझे शरण में रक्खें। ऐसा नियम लेने के बाद पतित, चोर, पाखण्डी, दुराचारी, मर्यादा भंग करने वाले तथा गुरुपत्नी-गामी मनुष्यों से वार्तालाप न करे। नदी में, पोखरे में, कुयें पर तथा घर में ही स्नान करे। स्नान के पहले शरीर में मिट्टी इस मन्त्र से लगावे—

एकादशी विधि

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं जन्मकोट्यां समर्जितम् ॥

हे वसुन्धरे ! तुम्हारे ऊपर अश्व-रथ चला करते हैं। तथा वामन भगवान् ने भी तुम्हें अपने पैरों से भी मापा था। मृत्तिके, मेरे सब पापों को दूर करो। इसके अनन्तर जल में स्नान करे स्नान करते समय इस मंत्र का उच्चारण करे:—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

अनन्तर भगवान विष्णु की षोडश उपचारों से विधिवत् पूजन करे। रात्रि में जागरण करने की बड़ी महिमा है। रात को नींद में न बिता कर भगवान् के लिये नृत्य और गीत में बिताना चाहिये। भगवान् के गुणानुवाद, नाम स्मरण में ही रात बितानी चाहिये। जागरण भी अधम तथा उत्तम दो प्रकार का होता है। दूसरों की निन्दा में लगना, मन का प्रसन्न न रहना, शास्त्र-चर्चा का अभाव, संगीत का अभाव, दीपक का न जलना, शक्ति के अनुसार पूजा के उपचारों का न होना, उदासीनता, निन्दा तथा कलह—इन दोषों से युक्त नव प्रकार का जागरण अधम माना गया है। जिस जागरण में शास्त्र की चर्चा, सात्त्विक नृत्य, संगीत, वाद्य, ताल, दीपक, कीर्तन, भक्ति भावना, प्रसन्नता, संतोष जनकता, समुदाय की उपस्थिति तथा लोगों के मनोरंजन का सात्त्विक साधन हो—यह उत्तम जागरण है और यह भगवान् को बहुत ही प्रिय है ! शुक्ल और कृष्ण दोनों ही पक्षों की एकादशी को प्रयत्न पूर्वक जागरण करता है उस पर भगवान् अत्यन्त

प्रसन्न होते हैं। इस अनुष्ठान का महत्त्व ध्यान देने योग्य है। रात्रि में चित्त स्वयं एकाग्र हो जाता है। उसका उपयोग भगवान् की सेवा तथा स्मरण में करना चाहिये। एकादशी विष्णु के लिये पवित्र ठहरी। उस दिन भगवान का चिन्तन स्मरण तथा भजन करना ही साधक का काम है। शास्त्रों में जागरण की बड़ी महिमा बतलाई गई है। द्वादशी के दिन अतिथि वा ब्राह्मण को भोजन कराकर स्वयं पारण करना चाहिये। एकादशी व्रत की यही सामान्य विधि है।

चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम 'पाप मोचनी' तथा शुक्ल पक्ष की 'कामदा' है। इसी प्रकार वैशाख मास की 'वरुथिनी' और 'मोहिनी' है।

एकादशियों के नाम

ज्येष्ठ मास की 'अपरा' तथा 'निर्जला', आषाढ़ मास की 'योगिनी' तथा 'शयनी', श्रावण मास की 'कामिका' और 'पुत्रदा' भादों मास की 'अजा' और 'पद्मा', आश्विन मास की 'इन्दिरा' और 'पापाङ्कुशा', कार्तिकमास की 'रमा' औ 'बोधिनी'; मार्गशीर्ष मास की 'विजया' तथा 'मोक्षा', पौष मास की 'सफला' और 'पुत्रदा'; माघ मास की 'षट्तिला और 'जया' और फाल्गुन मास की 'विजया' तथा 'आमलकी है'। पुरुषोतम मास की 'कमला' और 'कामदा' एकादशी होती है।

पौष शुक्ल पक्ष की एकादशी पुत्रदा कहलाती है। इसके विषय में यह कथा प्रचलित है कि प्राचीन काल में भद्रावती नगरी में एक राजा राज्य करता

एकादशी की कथा

था जिसका नाम सुकेतु था। उनकी स्त्री का नाम शैव्या था। राजा बड़ा प्रजाप्रिय तथा न्याय-प्रिय था। सब कुछ ऐश्वर्यधन आदि के रहते भी एक चीज की कमी थी। पुत्र के न होने से राजा और रानी दोनों बड़े दुःखी थे। धीरे धीरे राजा को अपने पुत्र-हीन होने पर इतना खेद हुआ कि वह आत्मघात करने के लिये तैयार हो गया। संयोगवश एक दिन राजा जंगल में शिकार खेलते खेलते दूर निकल गया और भूख-प्यास से व्याकुल हो गया। कुछ दूर आगे बढ़ने पर उसे एक बड़ा भारी सरोवर दिखलाई पड़ा जहाँ मुनि जन वेद पाठ कर रहे थे। राजा के पूछने पर मुनियों ने बतलाया कि आज पुत्रदा एकादशी का व्रत है। राजा ने अपने पुत्र-हीन होने की बात मुनियों को बतलाई। तो उन्होंने उस व्रत को करने का आदेश

दिया। राजा और रानी ने एकादशी व्रत को विधिवत् किया। फल स्वरूप उन्हें सुन्दर बालक उत्पन्न हुये। राजा सुधन्वा बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रति वर्ष इस एकादशी व्रत को विधिवत् करने लगा।

सत्यनारायण-व्रत

इस व्रत का वर्णन स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड में किया गया है। यह व्रत सार्वकालिक है। इसके लिये किसी विशेष दिन और महिमा की आवश्यकता नहीं होती। किसी भी शुभ दिन को इसका अनुष्ठान किया जा सकता है। परन्तु विशेषकर यह व्रत एकादशी और पूर्णिमा को किया जाता है। पहिले आरम्भ में विघ्न शान्ति के लिये गणेश जी का पूजन किया जाता है। अनन्तर विष्णु भगवान् का विधिवत् पूजन तथा अर्चन किया जाता है। भगवान् को षोडशोपचार से पूजन करना चाहिये। प्रसाद के लिये फल, आटा का चीनी मिश्रित चूर्ण, मिष्ठान आदि रखना चाहिये। पूजन के अनन्तर कथा सुने और प्रसाद तथा-रक्षा सूत्र धारण करे। और उसे विप्रों तथा सम्बन्धिओं में बाँटे। बिना दक्षिणा का यज्ञ निष्फल होता है। अतः कथा बाचने वाले ब्राह्मण को यथा शक्ति दक्षिणा दे। सत्यनारायण की कथा इस प्रकार है:—

कथा

प्राचीन काल में एक बड़ा धनाढ्य बनिया था। संपत्ति तो उसके पास खूब थी परन्तु सन्तति नहीं थी। उसने संकल्प किया कि जब मुझे सन्तति होगी तब मैं भी सत्यनारायण का व्रत करूँगा। उसकी स्त्री का नाम था लीलावती। ईश्वर की अनुकम्पा से उसके स्त्री को लड़की हुई जिसका नाम 'कलावती' रक्खा गया। स्त्री ने पति को याद दिलाया कि अब तो कन्या हुई। सत्यनारायण का व्रत करना चाहिये। पति ने टाल मटोल कर उत्तर दिया कि इसके विवाह के समय सत्यनारायण की कथा सुनूँगा। कलावती के विवाह के लिये कांचनपुर गया। वहाँ पर एक सुन्दर योग्य वर से

विवाह सम्पन्न कर दिया। इस समय भी उस बनिया ने सत्यनारायण की कथा न सुनी। इस पर सत्यनारायण भगवान् क्रुद्ध हो गये।

बनिया अपने दामाद के साथ व्यापार करने के लिये समुद्र के तट रत्नसार नगर में गया। वहाँ पर धीरे धीरे व्यापार से बहुत रुपैया इकट्टा किया। धन से उसने बहुत से नाव बना लिया। एक रात की बात है कि चोरों ने राजा के धन को चुरा लिया। राजा के नौकरों को पता चल गया और उनका पीछा किया। समुद्र के किनारे आकर उस बनिये के नाव पर सब धन फेंक कर वे अन्तर्धान हो गये। राजा के नौकर इस बनिये को चोर समझ कर बेड़ी में बाध कर राजा के पास ले आये और उन्हें कारागार में बन्द कर दिया। उधर कलावती के घर का सब धन चोरों के द्वारा चुरा लिया गया। एक दिन कलावती सन्ध्या के समय घर पर देर से आई क्योंकि वह सत्यनारायण की कथा सुन रही थी। घर पर आकर लीलावती ने प्रतिज्ञा कि दामाद और पति के आने पर सत्यनारायण की कथा सुनूँगा। पुनः इसके प्रतिज्ञा को सुनकर सत्यनारायण की कृपा से वह बनिया कारागाह से छोड़ दिया गया। धनधान्य से युक्त वे घर के तरफ चल दिये। मार्ग में सत्यनारायण दण्डी के भेष में मिले और पूछा कि नाव में क्या है ? बनिये ने उत्तर दिया कि घासफूस है। उनके शाप में धन घासफूस में परिणत हो गया। फिर दण्डी की कृपा से पूर्ववत् हो गया। वे दोनों घर पर पहुँच गये। उस समय कलावती और लीलावती दोनों सत्यनारायण की कथा को सुन रही थीं। प्रसाद को लेकर शीघ्र लीलावती पति को देखने के लिये गई। कलावती बिना प्रसाद लिये चली गई। फलस्वरूप उनका पति नाव के साथ ही डूब गया। वह बहुत दुःखित हुई।

आकाश वाणी हुई कि कन्या (कलावती) घर जाकर प्रसाद खा आवे तब उसका पति जीवित हो जायेगा। ऐसा ही हुआ। उसका पति जीवित होगया। घर पर आकर दोनों ने स्त्री के साथ कथा सुनी और प्रसाद ग्रहण किया। उन्हें यह बात मालूम हो गई कि सत्यनारायण के कथा के टालमटोल करने का यह फल मिला। अतः तब से सर्वदा भगवान् सत्यनारायण का व्रत होने लगा।

इस व्रत का माहात्म्य बहुत ही अधिक है। हमारे धर्म में सत्य की सबसे अधिक पूजा है, सत्य के प्रति सबसे अधिक आग्रह। भगवान् स्वयं सत्यरूप हैं। सत्य ही नारायण हैं। इस बात को स्मरण रखकर हमें अपने कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिये। सत्य को कभी हाथ से जाने न देना चाहिये। हमे याद रखना चाहिये कि सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्य की ही विजय होती है अनृत की नहीं। सत्यनारायण व्रत के सार्वजनिक होने का अभिप्राय यह है कि हिन्दू समाज के प्रत्येक प्राणी के लिये सत्य का आचरण सदा करना चाहिये। जिस बात की हम प्रतिज्ञा करे उसे भलीभाँति निबाहना चाहिये। भीष्म ने सत्यरूपी भगवान् की स्तुति इस प्रकार की है :—

महत्त्व

यस्तनोति सतां सेतुमृतेनामृतयोनिना।
धर्मार्थंव्यवहारार्थंस्तस्मैसत्यात्मने नमः॥

पूजन-विधि

व्रतों में भगवान् के विधिवत् पूजन का विधान है। पूजन साङ्गोपाङ्ग होनी चाहिये। देवता के पूजन के लिये षोडश उपचार की आवश्यता होती है। ये उपचार गन्ध, अक्षत पुष्प, धूप, दीप आदि हैं। प्रत्येक कर्म मंत्र उच्चारण पूर्वक करना चाहिये। मंत्र दोनों प्रकार के हैं—वैदिक और लौकिक। यहाँ लौकिक मंत्रों का निर्देश करते हुए पूजन विधि का सामान्य वर्णन आवश्यक होने के कारण दिया जाता है।

पूजन के लिये व्रती को चाहिए कि वह स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन कर आसन पर बैठे तथा उस व्रत के करने का संकल्प करे। सामने अपने इष्टदेव की अथवा व्रत वाले देवता की प्रतिमा बनाकर रक्खे और इस प्रतिमा का पूजन विधिवत् करे। प्रत्येक विधान मन्त्र के साथ नीचे दिये जाते हैं। इसी क्रम से पूजन करना उचित है :—

ध्याये सत्यं गुणातीतं गुणत्रयसमन्वितम् ।
लोकनाथं त्रिलोकेशं कौस्तुभाभरणं हरिम् ॥ (ध्यान-मन्त्र)
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय हृषीकपतये नमः ।
मया निवेदितो भक्त्या अर्घोयं प्रतिगृह्यताम् ॥ (अर्घ-मन्त्र)
नारायण नमस्तेस्तु नरकार्णवतारक ।
पाद्यं गृहाणं देवेश मम सौख्यं विवर्द्धय ॥ (पाद्य-मन्त्र)
ॐ केशवाय नमः स्वाहा ।
ॐनारायणाय नमः स्वाहा । ॐ माधवाय नमः स्वाहा । (आचमन-मन्त्र)
स्नानं पंचामृतं देव गृहाण पुरुषोत्तम ।
अनाथनाथ सर्वज्ञ गीर्वाणप्रणतिप्रिय ॥ (पंचामृत स्नान)
सर्वभूषाधिके सौम्ये लोक-लज्जा-निवारणे ।
मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥ (वस्त्र-मन्त्र)
नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं चोत्तरीयं गृहाण परमेश्वर ॥ (यज्ञोपवीत-मन्त्र)
श्रीखण्ड चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥ (चन्दन-मन्त्र)
माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मयानीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर ॥ (पुष्प-मन्त्र)
वनस्पतिरसोद्भूतं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोयंप्रतिगृह्यताम् ॥ (धूप-मन्त्र)
साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्य-तिमिरापह ॥ (दीप-मन्त्र)
शर्कराघृतसंयुक्तं मधुरं स्वादु चोत्तमम् ।
आहारसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ (नैवेद्य-मन्त्र)
एलोशीर-लवङ्गादि-कर्पूर-परिवासितम् ।
प्राशनाथ कृतं तोयं गृहाण परमेश्वर ॥ (जल-मन्त्र)

पूंगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ (ताम्बूल-मन्त्र)
इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सकलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ (फल-मन्त्र)
हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ (दक्षिणा-मन्त्र)
कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम् ।
आरार्तिक्यमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ॥ (आरती-मन्त्र)
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि वै ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणे पदे पदे ॥ (प्रदक्षिणा-मन्त्र)
यन्मया भक्तियुक्तेन पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
निवेदितं च नैवेद्यं तद् गृहाणानुकम्पया ॥ (पुष्पाञ्जली)
त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।
गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर ॥ (प्रार्थना-मन्त्र)

आर्यसमाज के व्रत और उत्सव

इन पृष्ठों में जिन व्रतों का वर्णन किया गया है उन सब का अनुष्ठान सनातन-धर्मी हिन्दुओं के लिये नितान्त आवश्यक है। आर्यसमाजी हिन्दुओं में कतिपय ही पर्वों के अनुष्ठान की चलन है। 'आर्य डाइरेक्टरी' से पता चलता है कि लगभग दस प्रधान व्रत जिनमें आर्यसमाज श्रद्धा रखता है पूर्व वर्णित पर्वों में आ गये हैं। इनके अतिरिक्त छ सात व्रत बिलकुल नये हैं और इनका सम्बन्ध आर्यसमाज के विशिष्ट पुरुषों से हैं। इन पर्वों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है :—

(१) **दयानन्द जन्म दिवस**—यह उत्सव फाल्गुन वदी तेरस को मनाया जाता है। स्वामी दयानन्द का जन्म गुजरात के एक ब्राह्मण परिवार में इसी

तिथि को हुआ। इसी कारण यह तिथि पवित्र मानी जाती है। उस दिन प्रत्येक आर्य मन्दिर में स्वामी जी के चरित्र के ऊपर व्याख्यान होते हैं। तथा विशेष उत्सव मनाये जाते हैं।

(२) **ऋषि-बोधोत्सव**—जिस दिन सनातनधर्मावलम्बियों में शिवरात्रि का पर्व मनाया जाता है उस दिन आर्य-समाजी लोग ऋषि-बोधोत्सव मनाते हैं। इसी दिन उनके हृदय में सच्चे ज्ञान के अंकुर का उदय हुआ था। घटना यों बतलाई जाती है कि दयानन्दजी जब अभी बालक ही थे तब शिवरात्रि के रात को जागरण कर रहे थे। उस समय उन्होंने एक चूहे को शिवलिङ्ग के ऊपर चढ़कर चावल के दानों को खाते देखा। मूर्ति की सर्व-शक्तिमत्ता में जो उन्हें विश्वास था वह उड़ गया। वे वास्तविक शिव की खोज में निकल पड़े और ज्ञान प्राप्तकर इस नवीन समाज की स्थापना की। इस दिन आर्य-जनता आर्यसमाज मन्दिर में एकत्र होकर स्वामी जी के गुणानुवाद गाती है और उनके उपदेशों का प्रचार करती है।

(३) **दयानन्द निर्वाण दिवस**—संवत् १९४० के दीपावली को स्वामी जी का देहान्त हुआ था। इसीलिये प्रत्येक दीपावली (कार्तिक अमावस्या) को यह पर्व मनाया जाता है। उस दिन अपने घरों की सफाई आदि करके प्रत्येक आर्य-नरनारी को हवन करना चाहिए। और सायंकाल में समाज-मन्दिर में इकट्ठा होकर स्वामी जी के कार्यों की महत्ता पर भाषण करना तथा सुनना चाहिए।

(४) **स्थापना दिवस**—आर्यसमाज की स्थापना चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सं० १९३२ तदनुसार ७ अप्रैल १८७५ ई० बुधवार को बम्बई में स्वामी जी के कर कमलों से हुई थी। इसीलिये प्रत्येक वर्ष प्रतिपद् को इस महत्त्वपूर्ण घटना के स्मरण में स्थापना दिवस मनाया जाता है। इसी घटना से उस विशाल वृक्ष का बीजारोपण किया गया जिसकी शाखा प्रशाखायें इस समय भारतवर्ष तथा बाहर भी फैली हैं। उस दिन प्रत्येक आर्य घर साफ करके विधिवत् स्नान करे, स्वच्छ स्वदेशी वस्त्र धारण करें, वेद-मंत्रों से हवन करे तथा समाज-मन्दिर में सभा करे जिसमें आर्यसमाज की वर्तमान,

स्थिति, पूर्व-इतिहास तथा महत्ता-पूर्ण परिचय श्रोताओं को करावे।

(५) **लेखराम जयन्ती**—आर्य-समाज में स्वामी दयानन्द के बाद धर्मवीर पं० लेखराम के समान कोई दूसरा विद्वान् पुरुष नहीं हुआ। ये फारसी के पूर्ण पण्डित थे और इस्लाम धर्म की धज्जिया उड़ाने में पूर्ण दक्ष थे। इनका जन्म पंजाब के जिला झेलम में स्थित सैयदपुर नामक ग्राम में सं० १९१५ वि० चैत्र की अष्टमी को हुआ था। इनके आक्रमणों से घबड़ाकर मुसलमान इनके जानी दुश्मन हो गये थे। एक छद्मवेशी यवन ने फाल्गुन शुक्ल तृतीया १९५३ वि० (६ मार्च १८९७ ई०) को इन्हें मार डाला। अतएव इसी तिथि को इनकी जयन्ती मनाई जाती है। उस दिन इस धर्म-वीर के जीवन की कहानी बड़े प्रेम से सुनी और पढ़ी जाती है। इस महापुरुष के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिये प्रत्येक आर्य नर-नारी को यह उत्सव मनाना चाहिये।

(६) **श्रद्धानन्द बलिदान दिवस**—स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म पंजाब के जिला जालन्धर में सं० १९१३ वि० (फाल्गुन कृष्ण १३) हुआ था। पहले इनका नाम मुंशीराम था। सं० १९६३ में संन्यास लेने पर इनका नाम श्रद्धानन्द पड़ गया। सं० १९४१ वि० में आप आर्य-समाजी बने तब से आर्य-समाज की सेवा ही आपके जीवन का प्रधान ध्येय बन गया। सं० १९५८ में हरद्वार के पास कांगड़ी नामक स्थान में गुरुकुल की स्थापना की जिसमें नवीन पद्धति पर हिन्दी भाषा के द्वारा वेदों तथा शास्त्रों की समुचित शिक्षा दी जाती है। गुरुकुल का आदर्श प्राचीनकाल की वह शिक्षा पद्धति है जिसमें ब्रह्मचर्य का निर्वाह करता हुआ छात्र मानसिक तथा शारीरिक उन्नति समभाव से प्राप्त करता है। उन्होंने मलकानों की शुद्धिकर हिन्दुओं में अपूर्व जागृति कर दी थी। मुसलमानों को यह बहुत बुरा लगा। एक मुसलमान ने २३ दिसम्बर १९२६ को इन्हें गोली से मार डाला। तदनुसार पौष की नवमी को इनका बलिदान-दिवस मनाया जाता है।

व्रतानुक्रमणिका